* ओ३म् *

आर्याभिविनयः

प्राकृतभाषानुवादसहित

श्रीमद्दयानन्दसरस्वती

स्वामिनानिर्मित

सर्वलोकहिताय

५००० प्रति संवत् १९८९ मूल्य ≡)

"रामलाल कपूर ट्रस्ट ग्रन्थमाला"
ग्रन्थाङ्क २
सम्पादक—वाचस्पति ऐम० ए०

प्रकाशक—
मन्त्री रामलाल कपूर ट्रस्ट

मुद्रकः—पं० महावीर प्रसाद
विद्या प्रकाश प्रेस अनारकली लाहौर

ओ३म्

सम्पादकीय वक्तव्य.

कई सज्जन कहते हुए सुने जाते हैं कि आर्य समाज में शुष्क तर्क बहुत अधिक है, यहाँ भक्ति का अभाव है, इसी लिए कई लोग आर्य समाज को छोड़ कर अन्य मतों में चले गए हैं, क्योंकि असल वस्तु न मिले तो लोगों को नकल से ही काम चलाना पड़ता है। जब आर्य समाज लोगों को सच्ची वैदिकभक्ति की शिक्षा न दे, तो यह कुछ अंशों में स्वाभाविक हो जाता है कि वह लोग नकली भक्ति से शान्ति प्राप्त करने का यत्न करेंगे चाहे वह शान्ति भी सच्ची शान्ति न हो।

यह सम्भव है कि आर्य समाज में

कुछ व्यक्ति ऐसे मिल जाएं जिनके जीवन में तर्क प्रधान हो और वे भक्ति शून्य हों। परन्तु यह विचारना कि आर्य समाज ने या आर्यसमाज के प्रवर्तक ने भक्ति के अमृत के पिपासुओं को तृप्त करने का प्रबन्ध कुछ नहीं किया, एक भारी भूल होगी, क्योंकि आर्यसमाज के प्रवर्तक ने एक ग्रन्थ लिखा है, जो कि एक सच्चे ईश्वर-भक्त के हृदय के उद्गार हैं, और वह उद्गार ऐसे शब्दों में लिखे गए हैं, जिनका आधार प्यारे प्रभु की वाणी वेद है। भगवद्भक्तों के लिए इससे बढ़कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है? पतित-पावन प्रभु की वाणी और उसको सुनाने वाला प्रभु प्रेम में मस्त सच्चा ईश्वर भक्त! उस संग्रह का नाम है "आर्याभिविनयः"।

उन उद्गारों के कुछ नमूने आप श्रीयुत् पं० ब्रह्मदत्त जी द्वारा लिखित "भक्त की भावना" नामक लेख जो कि साथ ही छापा जा रहा है, में पढ़ेंगे।

आर्य पुरुषो! इस ग्रन्थ के महत्त्व को समझो। इस में ईश्वर भक्ति का प्रवाह ठाठें मार रहा है। आप को झूठे गुरुओं के पीछे भटकने की आवश्यकता नहीं है। इन मन्त्रों को कण्ठाग्र करो। मन्त्रों के अर्थों का नित्य पाठ करो, मन लगा कर करो और सच्ची श्रद्धा से करो। फिर देखो, दिन प्रति दिन आप को जो आनन्द आएगा, ईश्वर भक्ति की जो मस्ती आप अनुभव करगे, वह बढ़ती ही चली जायगी।

यह ग्रन्थ जहाँ ईश्वर भक्ति के भावों से भरा पड़ा है, वहाँ देश-भक्ति के भावों

की इस में कमी नहीं है। स्थान २ पर स्वराज्य की और चक्रवर्त्ती राज्य की प्रार्थना है। ऋषि वर को जिस ओर से देखें उनका महत्त्व चरम सीमा को पहुंचा हुआ पाते हैं। ईश्वर भक्ति में वह सब से बढ़े हुए हैं, संसार भर के देश भक्तों के व शिरोमणि हैं। उन का वर्णन करते हुए यही मुख से निकलता है-"महष ! तू धन्य है।"

देशभक्ति के कुछ नमूने "भक्तिमार्ग और कर्मयोग" शीर्षक श्री०पं० ब्रह्मदत्त जी के लेख में मिलेंगे।

ग्रन्थ की भाषा—आर्याभिविनय की भाषा के विषय में भी कुछ शब्द कहना अत्यन्त आवश्यक है। आज से ५० वर्ष पूर्व वह भाषा नहीं थी. जो आज है, इस लिये यह आशा नहीं की जा सकती कि

आर्योभिविनय की भाषा ठीक वैसी ही हो जैसी आजकल बोली या लिखी जाती है। यह बात भी सब पाठक जानते ही हैं, कि महर्षि दयानन्द सरस्वती गुजरात प्रान्त के रहने वाले थे, इस लिये उनकी जन्मकी भाषा गुजराती थी। वे प्रचार कार्य करते हुए भी वर्षों ही संस्कृत बोलते रहे, संस्कृत में व्याख्यान देते रहे और संस्कृत में ही शास्त्रार्थ आदि करते रहे, इस लिये ऋषिवर का आर्यभाषा लिखने वा बोलने का अधिक अभ्यास नहीं था। यह ग्रन्थ १९३२ संवत् के आरम्भ में लिखा गया था, उस समय ऋषि आर्य भाषा और भी कम जानते थे। इसलिये इस ग्रन्थ की भाषा कहीं २ कुछ खटकती सी है, जैसे—

"ईश्वर-भक्ति रहित मनुष्य का बल

ऐश्वर्यादि कभी मत बढ़ो।

आओ अपने सब मिलके ईश्वर को प्रसन्न करें।

पृष्ठ ५९ ॥

(२) आओ, भाई लोगो! ईश्वर की भक्ति करें"। पृष्ठ १०४ ॥

(३) जिससे हमारा वर्तमान श्रेष्ठ ही हो। पृष्ठ १७७ ॥

(४) उस की शोभा आपको नहीं होना।

पृष्ठ १७८ ॥

(५)मेघ भी सुखका शब्द लिए...इत्यादि।

ये हैं नमूने ऋषि की भाषा के।

महात्मा गान्धी भी गुजरात प्रान्त के निवासी हैं, उनकी भाषा की तुलना ऋषि की भाषा के साथ करने से पता लगता है, कि यह भाषा स्वाभाविक है महात्मा जी की

भाषा का नमूना नीचे दिया जाता है यह पत्र महात्मा जी ने पं० मालवीय जी के विषय में लिखा है--

"मैं तो मालवी जी महाराज का पुजारी हुं। पुजारी कैसे स्तुती के वचन लिख सके? जो कुछ लिखेगा, उसे अपूर्ण सा प्रतीत होगा। मालवी जी के दर्शन मैंने सन् १८९० की साल में चित्र द्वारा किया था। वह चित्र बिलायत में "इण्डिया" पत्र जो मी० डिगवी नीकालते थे उस में था। माना जाय कि वही छबी आज भी देख रहा हूँ। जैसे उनके लिबास में ऐसे ही उन के विचार में ऐक्य चला आया है, और इस ऐक्य में मैंने माधुर्य और भक्ति पाए हैं। आज मालवी जी के साथ देश भक्ति मैं कौन मुकाबला कर सकता है? यौवन काल से आरम्भ कर के आज तक उनकी देश भक्ति का

प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है। काशी विश्व विद्यालय के मालवी जी प्राण हैं, का० वि० वि०, मालवी जी का प्राण है। यह नरवीर हमारे लिए दीर्घायु हो।

बिलायत जाते हुए। ह० मोहनदास गान्धी।

७। ९। ३१

यह सब कुछ देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि ऋषि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र भाषा के प्रथमोद्धारक थे। उन्हों ने अपने जन्म की भाषा गुजराती होने पर और पठन पाठन की भाषा संस्कृत होने पर भी अपने सब ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे।

सम्भव है कि कई भाई कहें कि आर्याभिविनय की भाषा का संशोधन कर देना चाहिए। हमारा उन भाईयों से निवेदन है कि ऐसा करना ठीक नहीं होगा

क्योंकि भाषा के परिवर्तन करने पर प्रार्थना की स्वाभाविकता नष्ट हो जायगी। इस समय प्रार्थना एक ईश्वरीय-प्रेरणा से प्रेरित भक्त के हृदय से निकली हुई है। भाषा के परिवर्तन करने पर प्रार्थना में कृत्रिमता आ जायगी।

इस संस्करण की विशेषता--ऋषि ने आर्याभिविनय का प्रथम संस्करण १९३२ संवत् में निकाला था*। दूसरा संस्करण माघ १९४० में निकला -अर्थात् ऋषि-निर्वाण के कोई ३ मास पीछे। इस संस्करण को इन दोनों संस्करणों के साथ मिला (Collate) कर तय्यार किया गया

---

* देखो ऋषि का पत्र व्यवहार चतुर्थ भाग (आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित) पत्र नं० १४३॥ (सम्पादक)

है। आज कल के संस्करणों में अनेक स्थलों पर पाठों की छपने आदि के कारण गड़बड़ थी। उन सब पाठों को ठीक कर दिया गया है। जैसे पृष्ठ ९३-९४ पर इस संस्करण में (प्रथम और द्वितीय संस्करण के अनुसार) १२ पंक्तियां ऐसी मिलेंगी जो कि आज कल के संस्करणों में नहीं मिलतीं। यह पंक्तियां ब्रैकट में दे कर नीचे टिप्पणी दे दी गई है। इसी तरह से पृष्ठ १३४-१३५ पर लग भग ८ पंक्तियां ऐसी मिलेंगी जो आज कल के संस्करणों में नहीं मिलतीं। पाठों का संशोधन करते समय जहाँ कुछ थोड़ा बहुत भी अधिक परिवर्तन है वहाँ टिप्पणी दी गई है। इस संस्करण में एक शब्द भी सम्पादक ने अपनी ओर से नहीं घटाया बढ़ाया। यह सारा संस्करण

या तो आज कल के अजमेरीय संस्करण के अनुकूल है, और या जहां भेद होगा वहां प्रथम और द्वितीय संस्करणके अनुकूल है।

इस संस्करण में अनेक स्थलों पर ग्रन्थ की भाषा को समझाने के लिए टिप्पणियाँ दी गई हैं।

कई स्थलों पर टिप्पणियों द्वारा विषय को स्पष्ट किया गया है। कुछ स्थल ऐसे हैं, जिन पर विधर्मी लोग आक्षेप करते रहे हैं, उन आक्षेपों का उत्तर भी टिप्पणी में दिया गया है।

प्रत्येक मन्त्र नए पृष्ठ से आरम्भ किया गया है।

इस संस्करण पर बढ़िया काग़ज़ लगवाया गया है और छपवाई दो रङ्गों में

करवाई गई है। पुस्तक कितनी सुन्दर छपी है, यह पाठक स्वयं देख सकते हैं। इतनी विशेषता होते हुए भी यह ग्रन्थ इतने सस्ते दामों, जो कि लागत से भी कम है, जनता की भट किया जा रहा है। यह केवल इसी लिये कि इस पावन ग्रन्थ का प्रचार बढ़े और ईश्वर भक्ति का स्रोत बहे।

इस सब का श्रेय रामलाल कपूर ट्रस्ट के अधिकारियों को है, जो आर्ष ग्रन्थों के प्रचार के लिये इतना श्रम कर रहे हैं। मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं कि उन्हों ने मुझे अवसर दिया है कि मैं भी ऋषिऋण के कुछ भाग से उऋण होकर कल्याण का भागी बन सकूँ।

सच्चे ब्राह्मण, उच्च कोटि के तपस्वी और

त्यागी श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने इस संस्करण के तय्यार करने में बहुत सहायता दी है। आप ने काशी में बैठे हुए 'भक्त की भावना' और 'भक्ति और कर्म योग' लिख कर भेजा। आप ने टिप्पणी लिखने में सहायता दी, और आप ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये बहुमूल्य सम्मति समय २ पर दी। मैं आप का अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

श्रीयुत देवेन्द्र कुमार जी बी० ए० (आनर्ज) ने इस ग्रन्थ के प्रूफ संशोधन आदि में मुझे सहायता दी है उनका मैं कृतज्ञ तो हूँ परन्तु उनका धन्यवाद नहीं करता, क्योंकि वैदिक धर्म की सेवा के जो काम भी हम करें वे हमारे दोनों के साँझे हैं।

मैं डी० ए० वी० कालिज रीसर्च

लायब्रेरी के अध्यक्ष श्री पं० भगवद्दत्त जी और श्रीयुत हंसराज जी लायब्रेरियन का धन्यवाद करता हूं कि उन्हों ने मुझे आर्याभिविनय का प्रथम संस्करण कई मास के लिये दिये रखा। श्रीयुत माम राज जी ने अपने संग्रह से द्वितीय संस्करण मुझे देकर अत्यन्त कृतज्ञ किया है।

इन शब्दों के साथ यह सुन्दर संस्करण भगवद्भक्तों की सेवा में भेंट करता हूं। जो कोई त्रुटियां रह गई हों, उनसे सहृदय पाठक सूचित करें, ताकि आगामी संस्करण में उन को निकाल दिया जाय।

निवेदकः—

वाचस्पति--सम्पादक

* ओ३म् *

असतो मा सद् गमय !
तमसो मा ज्योतिर्गमय !!
मृत्योर्माऽमृतं गमयेति !!!

असत् से सत् की ओर ले चलो !
हे प्रभो ! अन्धकार से प्रकाश की ओर
ले चलिये !!
मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो !!!

भक्त की भावना

धर्म-आचार-और भक्ति इन शब्दों का दुरुपयोग संसार में जितना हो रहा है, उतना स्यात् ही किसी शब्द का हुआ होगा। धर्म-आचार-और भक्ति के ही नाम पर इतने बड़े २ अत्याचार संसार में हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती। संसार की प्रायः सभी जातियों तथा देशों के इतिहास इन से

भरे पड़े हैं। निष्पक्ष-उदार भाव से विचारने पर बुद्धिमान् मनुष्य को यही निश्चय हो रहा है, कि धर्म—आचार—और भक्ति के वास्तविक स्वरूप को न समझ कर ही ये सब अनर्थ भूमण्डल में हो रहे हैं।

धर्म (धरति लोकं धार्यते येन जगत्) नाम उन नियमों (Principal laws of nature) का है जिनके आधार—आश्रय पर यह संसार चल रहा है। आचार उस व्यवहार का नाम है जिसको करने से मनुष्यों का परस्पर कभी कुछ भी झगड़ा नहीं हो सकता। दूसरों के साथ वही बर्त्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। "आत्मवत् सर्व-भूतेषु"। "Do with others as you wish to be done by others." "हर चे बर खुद मपसन्दी बर दीगरां मपसन्द"। यह है

धर्म और आचार का विशुद्ध स्वरूप। क्या कोई कह सकता है कि इस धर्म—और आचार की विश्व में कभी—किसी भी अवस्था में आवश्यकता नहीं? यह धर्म और आचार तो मानव-समाज से तीन काल में लुप्त नहीं हो सकता। एक जैसा आवश्यक—नहीं २ अन्तर्हृदय की सच्ची भावना से अपनाने योग्य है और रहेगा।

भक्ति

भी अन्तरात्मा की हृदय के अन्तः-पटल में वर्त्तमान रहने वाली उन गहरी भावनाओं तथा उद्गारों का नाम है जो विना किसी विडम्बना के सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता प्रभु की सत्ता का स्वयं अनुभव करते हुए उत्पन्न होती हैं। जिन भावनाओं का बाह्य जगत्—लोकाचार से कुछ भी सम्बन्ध नहीं

होता। पिता-पुत्र—अथवा शिशु और माता की वह कल्लोलें हैं जो विना किसी शब्द का उच्चारण किये स्नेह से परिपूर्ण अवस्था में होती हैं।

इस के विपरीत लोक-समाज के विचार से-लोकैषणा की दृष्टि से-किसी विशेष समुदाय को अपने पीछे चलाने के लिये-हमारी ध्यान के नाम पर की हुई अनेक क्रियायें 'भक्ति' की परिभाषा में नहीं आ सकतीं।

इन मिथ्या भक्तियों से पृथक् करने के विचार से ही परम तपस्वी—परम ईश्वर-भक्त, महायोगी, जितेन्द्रिय, निष्पक्षपात महात्मा ऋषि दयानन्द सरस्वती ने भक्ति-मार्ग के इस ग्रन्थ की वेद-मन्त्रों के आधार पर रचना की, अपनी कल्पनामात्र के

आधार पर नहीं ।

संसार में प्राय: यही देखा जाता है 'फलं धर्मस्य चेच्छन्ति, धर्मं नेच्छन्ति मानवाः' धर्म न करके धर्म का फल लोग प्राय: चाहते हैं । 'हींग लगे न फिटकरी रङ्ग चखा' यम नियमों का पालन किये विना ही हम लोग 'भक्त' बनना चाहते हैं । इस मार्ग पर चलाने वाले कनफुक्वे गुरुओं की ही आज कल दाल गलती है । यम नियमों वाली (जैसे इस ग्रन्थ की) सीधे सादे शब्दों की भक्ति का तो सूखी भक्ति के नामसे पुकारा जाता है । यह भ्रम और तो और कई कहीं कहीं आर्य कहलाने वालों को भी देखा जाता है । वे कोई भड़कीली चमाचम भक्ति चाहते हैं । सो यह तो प्रकृति के गुण हैं । दोनों— आत्मा और परमात्मा तो इससे पृथक्

हैं। हां जीव अज्ञान-वश उस में फँस जाता है, तभी उस को यत्न भी करना पड़ता है।

पवित्र वेद-वाणी में सूक्तों के सूक्त ऐसी भक्ति से परिपूर्ण हैं, जिन में वही स्वाभाविक (natural) भावों का ही सञ्चार है, बनावटी बातों का उनमें लेश भी नहीं। यह इस ग्रन्थ के एक २ मन्त्र का ध्यान पूर्वक पाठ करने से ज्ञात हो सकता है।

अन्तर्हृदय की उपर्युक्त भावनाओं के कुछ अंश इस ग्रन्थ में से सहृदय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं:—

"आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते। सो आप सदैव हम को सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है"। पृष्ठ १७॥

"हम सब लोग आपकी प्राप्ति की अत्यन्त

इच्छा करते हैं। सो आप अब शीघ्र हम को प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा"। पृष्ठ २४६ ॥

"हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो, विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है"। पृष्ठ २५८ ॥

"किन्तु हम लोग तो आप के प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आप के अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारकः हैं, इस से हमको स्वकृपा कटाक्ष से सुखी करें"। पृष्ठ २३०॥

"अधर्मात्मा-अविद्वान्-विचारशून्य-अजितेन्द्रिय-ईश्वरभक्ति रहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है, अर्थात् वे कोटि २ वर्ष तक उसको प्राप्त नहीं होते"। पृष्ठ १६८॥

"जैसे पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्द पूर्वक निवास करते हैं वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी ही रहते हैं"...... पृष्ठ १०३ ॥

"इस ग्रन्थ से...केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे" उपक्रमणिका ॥

यह है हृदयङ्गम—सच्ची भावना से परिपूर्ण—पूर्ण श्रद्धायुक्त—भक्त की भावना जो एक साक्षात्कृतधर्मा परम ईश्वरभक्त के उद्‌गार हैं जिनके एक २ शब्द पर घण्टों विचार करने पर भी अधिक से अधिक आनन्द प्रतीत होता है। जिस दिन—जिस घड़ी हम इस मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय कर चुकेंगे और हमें मार्ग की अनुकूल सामग्री

की उत्कट खोज होगी तभी इन भोले भाले (सरल) शब्दों का महत्त्व हमें समझ में आवेगा।

आत्मरोग की औषध के इस महाभण्डार में न जाने कब कौनसी औषध उपयुक्त सिद्ध हो (कारगर साबित हो)।

यह तो निश्चय ही है:—

"सहि दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारऽऽसेवितो दृढ़भूमिः" योग० १ । १४ ॥

इस भक्ति मार्ग का निरन्तर उपासक ही अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुंच सकता है। प्रभु कृपा करें हम इस पथ के अनुगामी बनें !!!

विनीत—

ब्रह्मदत्त जिज्ञासुः।

भक्ति मार्ग और कर्म योग

वर्तमान समय में कर्मण्यता और भक्ति ये दोनों परस्पर विरुद्ध कहे जाते हैं। वैदिक भक्तिवाद इस के सर्वथा विपरीत है। वे तो "ईशावास्यं" के साथ "कुर्वन्नेवेहकर्माणि" संसार में कर्मशील बनो और कोई मार्ग नहीं, यही पुनः २ पुकार कर कह रहे हैं। कर्म मार्ग के प्रतिपादक अन्य भी ग्रन्थ हैं, परन्तु जितना निस्सन्देह, विना किसी लाग लपेट के कर्मण्यता का प्रतिपादन वेद करता है उतना कोई दूसरा नहीं। यह बात इस ग्रन्थ को देखनेसे स्पष्ट विदित हो जाती है:-

"पाहि नो अग्ने रक्षसः, पाहि धूर्त्तेरराव्णः। पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ ऋ० १। ३। २०। १५ ॥

हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देह धारियों से हमारी पालना करो ।......जो हम को मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम ! उन सब से हमारी रक्षा करो" । पृ० ३८ ॥

"हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! 'क्षत्राय' अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त, कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर । अन्य देश वासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों"। पृष्ठ २१४ ॥

(३) "अन्याऽन्य प्रीति से परम वीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें । हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों" । पृष्ठ १११ ॥

(४) "वीरों के चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त हों ॥ पृष्ठ १०१ ॥

(५) "हे कृपा सिन्धो भगवन्!........ हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े । पृष्ठ ५३॥

(६) हे कृपा निधे ! हमको विद्या, शौर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति सम्प्रीति स्वदेशसुख सम्पादनादि गुणों में सब नर-देह धारियों से अधिक उत्तम करो तथा सबसे अधिक आनन्द, भोग सब देशों में अव्याहत-गमन (इच्छानुकूल जाना आना) .... करो । पृष्ठ ४६॥

(७) "साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये" पृष्ठ ५३ ॥

सच्चे ईश्वर-भक्त की भावना में कर्मण्यता कहां तक है, तथा ऐसी कर्मण्यतापूर्ण भक्ति

कहां तक ग्राह्य है यह सहृदय पाठक स्वयं समझ सकते हैं ।

आर्य और निष्कर्मण्य ये दोनों परस्पर विरोधी हैं । वैदिक कर्मवाद का सच्चा स्वरूप यही है ।

निवेदकः—

ब्रह्मदत्त जिज्ञासुः

प्रकाशकीय—वक्तव्य

रामलाल कपूर ट्रस्ट का तृतीय पुष्प आर्य जनता की सेवामें भेंट किया जाता है। इसका संपादन जिस योग्यता तथा सुन्दरता से हुआ है उसका श्रेय श्री पं० वाचस्पति जी M. A, B. Sc. विद्या· वाचस्पति को है। परोपकार के भाव से प्रेरित होकर, महर्षि दयानन्द जी के हृदयोद्गारों को भटकती हुई जनता तक पहुंचाने के लिये, जिस अनथक परिश्रम से श्री पं० जी ने अपना अमूल्य समय दे कर यह संस्करण निकाला है इस के लिये हम उन का हार्दिक धन्य-वाद करते हैं।

इस गुटके पर हमारा कुल व्यय केवल कागज़, छपवाई तथा जिल्द पर लगभग ११५०) हुआ है। परन्तु इसका मूल्य २५ प्रतियों से कम के ख़रीदार के लिये ≡) रखा गया है, जिस में से कि, अधिक प्रतियों के ख़रीदार को जो रियायत दी जानी है उसका सब हिसाब लगाकर इस ट्रस्ट की ओर से इस शुभ यज्ञ में लगभग ४५०) की आहुति दी जा रही है।

परमात्मा करे संसार में प्रभुभक्ति की पुनीत-पावनी गङ्गा पुनः प्रवाहित हो, सांसारिक झंझटों से सन्तप्त मानव-हृदय उस प्राण-प्यारे प्रभु की भक्ति में लीन हो कर सच्ची शांति तथा वास्तविक आनन्द का आस्वादन करें। इसी

में हम अपने तुच्छ प्रयत्न की सफलता समझते हैं।

रूपलाल।

मंत्रीः—

रामलाल कपूर ट्रस्ट,

लाहौर।

रामलाल कपूर ट्रस्ट का उद्देश्य

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण,
रक्षा और प्रचार

ट्रस्ट के अन्य ग्रन्थ

(१) वैदिक सन्ध्या।

(२) पञ्च महा यज्ञ विधि।

पताः—

रामलाल कपूर ऐण्ड सन्ज,

(कागज़ी)

अनारकली लाहौर।

अकारादिक्रमेण

मन्त्रानुक्रमणिका

----

* ओम् *

अथार्य्याऽभिविनयोपक्रमणिका-विचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो-
ऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो
दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥

चक्षू - रामाङ्कचन्द्रेब्दे
चैत्रे मासि सिते दले ।
दशम्यां गुरुवारेऽयं
ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ २ ॥

बहुभिः प्रार्थितः सम्यग्
ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना ।
हिताय सर्वलोकानां
ज्ञानाय परमात्मनः ॥ ३ ॥

वेदस्य मूलमन्त्राणां
व्याख्यानं लोकभाषया ।
क्रियते सुखबोधाय
ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ॥ ४ ॥

स्तुत्युपासनयोः सम्यक्
प्रार्थनायाश्च वर्णितः ।
विषयो वेदमन्त्रैश्च
सर्वेषां सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥

विमलं सुखदं सततं सुहितं
जगति प्रततं तदु वेदगतम्।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी
स नरोऽस्ति सदेश्वरभागधिकः ॥६॥
विशेषभागीह वृणोति यो हितं,
नरः परात्मानमतीव मानतः।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥७॥

व्याख्यान—जो परमात्मा, सब का आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्याय करने वाला, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्य वाला हमारा इष्ट देव है वह हम को सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे! यह काम हमारा आप ही सिद्ध

करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप हमारी कामना सिद्ध करेंगे ॥ १ ॥

संवत् १९३२ मिती चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ हम ने किया ॥ २ ॥

बहुत सज्जन लोग, सब के हितकारक धर्मात्मा विद्वान् विचारशील जनों ने मुझ से प्रीति से कहा, तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो, इसलिये इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ ३ ॥

इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों के और ब्राह्मण ग्रन्थों के* मूलमन्त्रों का प्राकृत भाषा

---

*"और ब्राह्मण ग्रन्थों के" यह पाठ आर्याभिविनय के आजकल के संस्करणों में नहीं मिलता, परन्तु हमारा विचार है कि यह पाठ अवश्य

में व्याख्यान किया है, जिससे सब लोगों को सुख से बोध हो और ब्रह्म का ज्ञान यथार्थ हो ॥ ४ ॥

इस ग्रंथ में परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना तथा धर्म्मादि विषय वर्णन किया है परन्तु मूल संहिता मन्त्र और ब्राह्मण प्रमाण से ही। सब को बढ़ाने वाला* यह विषय है† ॥ ५ ॥

होना चाहिए क्योंकि —

(क) प्रथम और द्वितीय संस्करण में यह पाठ मिलता है।

(ख) आर्याभिविनय में "सहनाववतु" इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थ का मन्त्र विद्यमान भी है।

*सामान्य भाषा में इसका भाव है "सब के सुखों के बढ़ाने वाला।" (सम्पादक)

†आजकल के संस्करणों में निम्नलिखित पाठ है—

जो ब्रह्म विमलसुखकारक, पूर्ण काम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सबसे सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है ॥ ६ ॥

जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्म्मात्मा, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही जन अतीव भाग्यशाली है क्योंकि वह

' इस ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से सब सुखों को बढ़ानेवाली परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना तथा धर्मादि विषय का वर्णन है।"

परन्तु हमारा पाठ प्रथम और द्वितीय संस्करण के अनुकूल है ॥ (सम्पादक)

मनुष्य यथार्थ सत्य विद्या से सम्पूर्ण दुःख से छूट के परमानन्द परमात्मा का नित्य सङ्ग रूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है फिर कभी जन्म मरण आदि दुःख सागर को नहीं प्राप्त होता*, परन्तु जो विषयलम्पट, विचाररहित,

---

* "परमात्मा का नित्य सङ्ग......फिर कभी. ...दुःखसागर को नहीं प्राप्त होता" महर्षिके इस वाक्य वा ऐसे अन्य वाक्यों को समझने के लिए सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास का पढना अत्यन्त आवश्यक है, वहां महर्षि ने मोक्ष के विषय की विस्तार से व्याख्या की है, वहां यह बताया है कि—"मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होकर ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग कर पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड कर संसार में आते है"।

अतः आर्याभिविनय के इस वाक्य का तात्पर्य

विद्या धर्म जितेन्द्रियता सत्सङ्गरहित, छल, कपट, अभिमान, दुराग्रहादि दुष्टतायुक्त है,

यही है, कि मुक्त जीव एक महाकल्प तक कभी जन्म मरण आदि बन्धन को प्राप्त नहीं होते। आर्याभिविनय के आजकल के संस्करणों में उक्त पाठ के स्थान पर "और परमात्मा की प्राप्ति जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है, दुःखसागर से छूट जाता है" ऐसा पाठ है परन्तु १ म और २ य संस्करण में पाठ यही है जो पाठ हम ने रखा है। इसलिए हमने यही पाठ रखना उचित समझा है।

मोक्ष के विषयमें सिद्धान्त को खोला सत्यार्थ-प्रकाश में ही गया है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी यह विषय अत्यन्त संक्षेप से लिखा है। वहां भी ऐसे वाक्य हैं जैसे "दुःखों के अभाव से पूर्वोक्त परमानन्द मोक्ष में अर्थात् सब दिन

सो वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है और वह मनुष्य जन्म मरण ज्वरादि पीड़ाओं से पीड़ित होके सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है ॥ ७ ॥

इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर होके इस लोक (संसार व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इनकी सिद्धि यथावत् करें, यही सब मनुष्यों की कृतकृत्यता है।

के लिए परमात्मा के साथ आनन्द ही आनन्द भोगने को बाकी रह जाता है इसी का नाम मोक्ष है" ऐसे वाक्यों की सङ्गति सत्यार्थ-प्रकाश नवम समुल्लास के साथ मिलाकर पढ़ने से ही लग सकती है। (सम्पादक)

इस आर्याभिविनय ग्रन्थ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है। दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता। इससे व्यवहारविद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायंगे जैसे—"तदेवाऽग्निस्तदादित्यस्तद्वायुः"[1] इत्यादि, य० संहिता प्र०। "इन्द्रं मित्रं वरुणम्" इत्यादि ऋ०स०प्र०।[2] "बृहस्पतिर्वै ब्रह्म,"[3] "गणपतिर्वै ब्रह्म," "प्राणो वै ब्रह्म,"[4] "आपो वै ब्रह्म," "ब्रह्म ह्यग्निः"[5]

१. यजु० ३२।१॥ २. ऋग्० १।१६४।४६॥
३. ब्रह्म वै बृहस्पतिः॥ ऐत० १।१३॥ शत० ३।१।४।१५॥ ४. तै० ३।२।८।७॥
५. शत० १।५।१।११॥

इत्यादि, शतपथ ऐतरेयब्राह्मणादि प्र० । और "महान्तमेवात्मानम्" इत्यादि निरुक्तादि प्रमाणों मे परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है । तथा "मुखादग्निरजायत"[1] इत्यादि, य० सं० प्र० । "वायोरग्निः" इत्यादि ब्राह्मण प्र० । तथा "अग्निरग्रणीर्भवतीति"[2] इत्यादि निरुक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुण वाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि, वह लिया जाता है । इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति, प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायंगे जिस मे सायणादिकृत भाष्य-दोष और उनके अनुसार अंग्रेज़ी कृतार्थदोष रूप वेदों के कलङ्क निवृत्त होजायंगे और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से वेदों का, महत्त्व तथा वेदों का

१. यजु० ३१।१२।। २. निरु ७ । १४।।

अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी।

इस ग्रंथ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे जिससे नास्तिक और पाखण्डमतादि अधर्म में मनुष्य न फँसें। किञ्च सब प्रकार के मनुष्य अति उत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो, जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करें। यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा॥

इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा॥

* ओ३म् *

तत्सत्परब्रह्मणे नमः

अथार्याभिविनयप्रारम्भः

ओं शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः

शं नो॑ भवत्वर्य्य॒मा ।

शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॑ः

शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ १ ॥

ऋ० अ० १ । अ० ६ । व० १८ । मं० ९* ॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप,

---

* यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत जान लेना, क्योंकि आगे केवल अङ्कसंख्या लिखी जायगी । १ । ६ । १८ । ९ ॥ इनसे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र जान लेना ।

हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव,हे अद्वितीयानुपम जगदादिकारण, हे अज निराकार सर्वशक्तिमन् न्यायकारिन् हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार, हे सनातन, सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक,हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक,हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन,मान्यप्रद, हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद, विश्वासविलासक, हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक,हे दारिद्र्य-

विनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीति-वर्धक, हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक *, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, सुधर्मसुप्रापक, हे अर्थसु-साधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक, धर्म्मसुशिक्षक, रोग-विनाशक, हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदा-नन्दक परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभयनिर्बन्धनादे! हे अप्रति-मप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्व-वन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशे-

---

* शत्रु' शब्द का अर्थ यहां धर्म का विरोधी और पापी है। (सम्पादक)

षणवाच्य,हे मङ्गलप्रदेश्वर ! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हो । हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो । हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर ! आप वरुण अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, सो आप हमको परमसुखदायक हो । हे पक्षपातरहित, धर्मन्यायकारिन् ! आप अर्य्यमा (यमराज) हो, हमारे लिए न्याययुक्त सुख देने वाले आप ही हो । हे परमैश्वर्य्यवन् इन्द्रेश्वर ! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिए। हे महाविद्यावाचोधिपते, बृहस्पते, परमात्मन् ! हम लोगों को (बृहत्) सब से बड़े सुख को देने वाले आप ही हो । हे सर्वव्यापक अनंत पराक्रमेश्वर विष्णो! आप हमको अनंत सुख देओ । जो कुछ

मांगेंगे सो आपसे ही हम लोग मांगेंगे। सब सुखों का देने वाला आप के विना कोई नहीं है। सर्वथा हम लोगों को आप का ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय सब से बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आप का तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते, सो आप सदैव हमको सुख देंगे यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है ॥ १ ॥

स्तुति विषय

अग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ २ ॥१। १ । १ ।१॥

व्याख्यान—हे वन्द्येश्वराग्ने! आप ज्ञान-स्वरूप हो, आपकी मैं स्तुति करता हूं।

सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है—हे मनुष्यो! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति प्रार्थना और उपासनादि करो। जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि, तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना, वैसे सब के पिता और परमगुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है, जिससे हमको व्यवहार-ज्ञान और

परमार्थ-ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है वैसे परमविद्या वेद का भी आदि कारण ईश्वर है।

हे सर्वहितोपकारक! आप "पुरोहितम्" सब जगत् के हितसाधक हो। हे यज्ञदेव! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान-यज्ञादि के लिये कमनीयतम हो। "ऋत्विजम्" सब ऋतु वसन्त आदि के रचक अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुखके सम्पादक आप ही हो। "होतारम्"सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देने वाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले हो। "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय

पृथिव्यादिकों के धारण रचन करनेवाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करने वाले* एक आप ही हो।

---

* इसका भाव-रत्नो के धारण करान वाल है, यह इसी मन्त्र के भाष्य से (ऋषि के वेद भाष्य में) स्पष्ट है। वेद भाष्य १।१।१। में लिखा है

"रमणीयानि पृथिव्यादीनि सुवर्णादीनि च रत्नानि दधाति धापयतीति रत्नधा, अतिशयेन रत्नधा इति रत्नधातमः"॥ ऋषि का वेद भाष्य पृष्ठ १३।

इसका भाषार्थ—

"रत्नो के धारण कराने हारे।"

इसी प्रकार आगे ४र्थ मन्त्र के अर्थ तथा अन्य स्थलों पर "प्राप्त कराओ" के अभिप्राय से "प्राप्त करो"।

हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! इस लिये मैं वारम्वार आपकी स्तुति करता हूं, इसको आप स्वीकार कीजिये, जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥ २ ॥

इसके लिये अन्तः साक्षी भी है—

"(उद्गमय—प्रापय)" का अर्थ "प्राप्त कर" ऐसा ही आर्याभिविनय द्वि० प्रकाश मं० ११ के अर्थों में लिखा है।

इस में कारण भाषा शैली ही है, यह स्पष्ट है। (सम्पादक)

प्रार्थना विषय

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे ।
य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥३॥ १।१।२।३ ॥

व्याख्यान—हे महादातः, ईश्वराग्ने ! आपकी कृपासे स्तुति करनेवाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है, कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महा-पुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ाने वाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढ़ाङ्ग, धर्मात्मा, न्याययुक्त अत्यन्त वीर पुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्र-वर्त्ती राज्य और विज्ञानरूप धनको प्राप्त होऊं, तथा आपकी कृपासे सदैव धर्मा-त्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥ ३ ॥

स्तुति विषय

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥४॥ १।१।१।२ ॥

व्याख्यान—हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वान् तथा "नूतनैः" वेदार्थ पढ़ने वाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग (मनुष्य)* विद्वान् वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो, सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आपही सबके इष्टदेव हो॥४॥

---

*'मनुष्य' पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है । (सं०)

स्तुति विषय

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत् ॥५॥ १।१।१५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वदृक् ! सबको देखने वाले "क्रतुः", सब जगत् के जनक, "सत्यः" अविनाशी, अर्थात् कभी जिनका नाश नहीं होता, "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्य्यश्रवणादि, आश्चर्य्यगुण, आश्चर्यशक्ति, आश्चर्यस्वरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो जिन आपके तुल्य वा आप से बड़ा कोई नहीं है। हे जगदीश ! "देवेभिः" दिव्य गुणोंके सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों, सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो, वह राज्य आपका ही है, हम तो केवल आपके पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ॥ ५ ॥

प्रार्थना विषय

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥६॥ १।१।२।१॥

व्याख्यान—हे "अङ्ग" मित्र! जो आप को आत्मादि दान करता है* उसको

वेदभाष्ये—

"(दाशुषे) सर्वस्व दत्तवते," ऐसा पाठ है। अर्थात् सर्वस्व प्रभु के समपर्ण करनेवाले के लिये—

तथाच—"य आत्मदा बलदा" मन्त्र में प्रभु को आत्मदा (आत्मा का देने वाला) कहा है अर्थात् वह आत्म ज्ञान का दाता है। इसी प्रकार जीव 'दाश्वान्' आत्मादि दान करता है। अर्थात् अपने आप को प्रभु के समर्पण करता है। यहां पर "आदि" शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। (सम्पादक)

"भद्रम्" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो। हे "अङ्गिरः" प्राणप्रिय! यह आप का सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना। यही आपका स्वभाव हमको अत्यन्त सुख-कारकहै। आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिये जिससे सब दुःख दूर हों। हमको सदा सुख ही रहे ॥ ६ ॥

स्तुति विषय

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥७॥१।१।३।१॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल परेश वायो, दर्शनीय ! आप अपनी कृपासे ही हमको प्राप्त हो । हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आप के लिये ही "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं, वे सब आपके समर्पण किये गये हैं । उन को आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान

करो*)। हम दीनों की पुकार सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज़ समर्पण करता

*यहां पर 'स्वीकार करो'' और 'पान करो' यह दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक है। इन अर्थों पर कई भाई आक्षेप करते हैं कि यहां परमात्मा को सोमरस पान करने की प्रार्थना की गई है, इससे मूर्ति पूजा सिद्ध होती है, क्योंकि मूर्तिपूजक ठाकुर जी को भोग लगाते हैं, यहां परमात्मा को सोमरस पिलाया जाता है।

परन्तु आक्षेप करने वाले लोग भूल करते हैं। ठाकुर जी को भोग लगाने के लिये उन का मुंह आदि अंग होते हैं, यहां तो महर्षि स्पष्ट लिखते हैं–"सर्वात्मा से पान करो"। महर्षि इन शब्दों में स्पष्ट ही प्रभु को सर्वव्यापक और निराकार बता रहे हैं, तो फिर परमात्मा का मुंह और मूर्ति की कल्पना कैसे इन शब्दों से निकाली जा

है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर प्रसन्न होओ ॥७॥

सकता है? अत: मूर्तिपूजा के साथ तो इन शब्दों का दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

इस मन्त्र के सारे अर्थ पढ़ जाओ, प्रभु के साथ स्नेह का अतिशय द्योतित हो रहा है। प्रभुप्रेम की मस्ती है, सच्चे भगवद्भक्त के हृदय से सच्चे समर्पण के भाव निकले हुए हैं।

(सम्पादक)

प्रार्थना विषय

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती।
य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः ॥८॥ १।१।६।१०॥

व्याख्यान—हे वाक्पते ! सर्वविद्यामय ! हमको आप की कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्र विज्ञान युक्त वाणी प्राप्त हो। "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्त्तमान, "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञान युक्त "पावका" पवित्र स्वरूप और पवित्र करने वाली सदैव सत्यभाषणमय, मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आप के अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान "वसुः" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु"

सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिस से हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्य युक्त हों ॥८॥

स्तुति विषय

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ६॥ १।१।९।२॥

व्याख्यान—**हे परात्पर परमात्मन् ! आप "पुरूतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो, तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के "ईशानं" स्वामी और उत्पादक हो । "वार्य्याणाम" वर वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो, "सोमे" और उत्पत्ति-स्थान संसार आपसे उत्पन्न होने से***

* यहां पर कुछ पाठ रह गया प्रतीत होता है । क्योंकि मूल मन्त्र के दो पद 'सचा' 'सुते' का अर्थ विद्यमान नहीं। ऋषि के वेद भाष्य में—पृष्ट १०१ "ये सुते सोमे सचाः सन्ति··· तानभिप्रगायत" ऐसा दर्शाया हुआ है ।

"इन्द्रम्" परमैश्वर्य्यवान् आपको (अभि-प्रगायत *) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें, जिससे आप की कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

इस मन्त्र का अर्थ वेङ्कट माधव ने निम्न प्रकार से किया है-

"पुरूतेम बहूनामुपद्रपयितारं···

धनानामीश्वरमिंद्रमभिप्रगायत सहाभिषुते सोमे" (सम्पादक)

* इस शब्द की अनुवृत्ति मंत्र १।१।६ १॥ से आई है । (महर्षि)

प्रार्थना विषय

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१०॥

१ । ६ । १६ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिस्वामिन् ! आप ही चर और अचर जगत् के "ईशान" रचने वाले हो । "धियंजिन्वम्" सर्व-विद्यामय, विज्ञानस्वरूप, बुद्धि को प्रकाशित करने वाले सब को तृप्त करने वाले प्रीणनीयस्वरूप, "पूषा" सब के पोषक हो; उन आपका हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हूमहे" आह्वान करते हैं । "यथा" जिस प्रकार से आप

विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षाके लिये "अदब्धः रक्षिता" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिये 'पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो, आप से पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति को प्राप्त हों॥१०॥

स्तुति विषय

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः॥११॥१।२।७।१६॥

व्याख्यान—हे "देवाः" विद्वानो! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये, पृथिवी से ले के सप्तविध "धामभिः" धाम अर्थात् ऊंचे नीचे सात प्रकार के लोकों को बनाया, तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया। उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे।

हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो । कैसा है वह विष्णु ? जिसने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है, उसकी नित्य भक्ति करो ॥ ११ ॥

प्रार्थना विषय

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो
बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१२॥१।३।१०।१५॥

व्याख्यान — हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर! राक्षस हिंसाशीलदुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना और रक्षा करो। "धूर्त्तेरराव्णः" कृपण* जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो। जो हम को मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम! उन सब से हमारी रक्षा करो॥ १२॥

---

*'रा दाने' धातु से रावण, न रावणः 'अराव्णः' अर्थात् दान न देने वाला कृपण (सम्पादक)

स्तुति विषय

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः
स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो
ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१३॥
१ । ४ । १४ । १२ ॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो । इस से हम निर्भय हो के आनन्द कर रहे हैं, किञ्च "दिवम्"

परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुखविशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो। "परिभूः एषि" सब पर वर्त्तमान और सब को प्राप्त हो रहे हो। "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक, "अपः" अन्तरिक्षलोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो। कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये॥ १३॥

प्रार्थना विषय

वि जा॑नीह्यार्या॑न् ये च दस्य॑वो

ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान् ।

शाकी॑ भव॒ यज॑मानस्य चोदि॒ता

विश्वेत्ता ते॑ सध॒मादे॑षु चाकन ॥१४॥

१।४।१०।८॥

व्याख्यान-हे यथायोग्य सबको जानने वाले ईश्वर! आप "आर्य्यान्" विद्या धर्म्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो, "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादिदोषयुक्त उत्तम कर्म्म में विघ्न करने वाले, स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं इन सब दुष्टोंको आप

"रन्धय"—समूलाननू विनाशय – मूल-सहित नष्ट कर दीजिये । और ' शासद्-व्रतान्"ब्रह्मचर्य,गृहस्थ,वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठानव्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियोंको यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उनपर दण्ड निपातन करो), जिससे वे भी शिक्षायुक्त हो के शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाय, किंवा हमारे वश में ही रहें । "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो । आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो । मैं भी "सधमादेषु"उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ 'विश्वेत्ता ते"तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म्मों की "चाकन" कामना करता हूं सो आप पूरी करें ॥१४॥

स्तुति विषय

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत
एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१५॥
१ । ४ । १४ । १४ ॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! आप इन्द्र हो । हे मनुष्यो! जिस परमात्मा का 'अन्त इतना है', यह न हो,* उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता । तथा दिव अर्थात् सूर्यादिलोक, सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य निकृष्ट लोक, ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते, क्योंकि "अनु-

* अर्थात् जो अनन्त हो । (सम्पादक) ।

व्यच:" वह सबके बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है। तथा "न सिन्धव:" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते। "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ). तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते *। हे परमात्मन्! आप का पार कौन पा सके ? क्योंकि "एक:" एक (अपने से भिन्न सहाय रहित) स्व-सामर्थ्य से ही "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्"आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के पदार्थ

* जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना। (महर्षि)

आपका पार कैसे पा सकें? तथा "अन्यत्" आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो, किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और लय यथाकाल में करते हो इससे आप का सहाय हम लोगों को सदैव है ॥१५॥

प्रार्थना विषय

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना
विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे
विदा देवेषु नो दुवः ॥१६॥
१ । ३ । १० । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म ! आप "ऊर्ध्वः" सबसे उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो, तथा ऊर्ध्वदेश में हमारी रक्षा करो । हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर ! हमको "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि"–नितरां पाहि—सदैव अलग रक्खो । तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी

नित्य पालन करो। हे सत्यमित्र न्याय-कारिन् ! जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हम से शत्रुता* करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ)। "कृधी न ऊर्ध्वान्" हे कृपा-निधे ! हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, परा-क्रम, चातुर्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति सम्प्रीति, स्वदेशसुख-संपादनादि गुणों में सब नर देहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय,

---

* वेद भाष्य पृ० ८१६

"अत्रिणम्—अत्ति भक्षयत्यन्यायेन पर-पदार्थान् यः स शत्रुस्तम्। अन्याय से दूसरों के पदार्थों को खाने वाले शत्रु मात्र को...... ..।"

(सम्पादक)

जीवसे" सब से अधिक आनन्द, भोग सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना आना) आरोग्य, देह,शुद्ध मानस-बल और विज्ञान इत्यादि के लिए हमको उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो। "विद्रा"विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो * अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठा-युक्त सदैव हमको रक्खो ॥१६॥

* देखो फुटनोट मन्त्र २ पर ॥ (सं०)

स्तुति विषय

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒-
मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः पञ्च॒ जना॒
अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥१७॥
१ । ६ । १६ । १० ॥

व्याख्यान—हे त्रैकाल्याबाधेश्वर!' अदितिर्द्यौः" आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो। "अदितिरन्तरिक्षम्"अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सब के अधिष्ठाना हो। "अदितिर्माता" आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो। "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता

(जनक) और पालक हो और "स पुत्रः" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षक) करने वाले हो। "विश्वे देवा अदितिः" सब दिव्यगुण—विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करने वाले आप अविनाशी परमात्मा ही हैं। पंचजना "अदितिः" पंच प्राण जो जगत् के जीवनहेतु वे भी आप के रचे और आपके नाम भी हैं।* "जातमदितिः" वही एक चेतनब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं और, सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं। "अदितिर्जनित्वम्" वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत्

* अर्थात् वे प्राण आदि। (सं०)

के (जनित्वं) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं * ॥ १७ ॥

* ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहां ईश्वराभिप्रेत से ही अर्थ किया, सो प्रमाण जानना चाहिये ॥ (महर्षि)

प्रार्थना विषय

ऋ॒जु॒नी॒ती नो॒ वरु॑णो मि॒त्रो नय॑तु वि॒द्वान्।
अ॒र्य॒मा दे॒वैः स॒जोषाः॥१८॥ १।६।१७।१॥

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको "ऋजु०" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं की नीति को "नयतु" कृपादृष्टि से प्राप्त करो*। आप "वरुणः" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वरविद्या वरनीति देओ, तथा सब के मित्र शत्रुता रहित हो, हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये, तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, हमको भी सत्यविद्या से

---

*देखो नोट मन्त्र २ पर (सं०)

युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये, तथा आप "अर्य्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़के न्याय में वर्त्तमान हो, सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो, सो हमको भी आप तादृश करें, जिससे "देवैः, सजोषा" आप की कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हों। हे कृपासिन्धो भगवन् ! हमपर सहाय करो, जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥

——

प्रार्थना विषय

त्वं सोमासि सत्पंतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥१९॥१।९१।५॥

व्याख्यान—हे सोम राजन् सत्पते परमेश्वर! तुम सोम, (सर्वसवनकर्त्ता) सबका सार निकालने हारे प्राप्यस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करने वाले हो। तुम्हीं सब के राजा "उत" और "वृत्रहा' मेघ के रचक, धारक और मारक हो। भद्रस्वरूप, भद्र करने वाले और "क्रतु" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥१९॥

प्रार्थना विषय

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥२०॥

१।६।३०।८॥

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायत:" जो कोई प्राणी हममें पापी, पाप करने की इच्छा करने वाले हों, "विश्वत:" उन सब प्राणियों से "हमारी "रक्ष" रक्षा करो। जिसके आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता: किन्तु हम को आपके सहाय से तिलमात्र भी दु:ख वा भय कभी नहीं होगा। जो आप का मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दु:ख क्योंकर हो ॥ २० ॥

प्रार्थना विषय

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥२१॥१।२।७।२०॥

व्याख्यान—हे विद्वान् और मुमुक्षु जीवो! विष्णुका जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिस को प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं, फिर वहां से कभी * दुःख में नहीं गिरते। उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सबके हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं, वह परमेश्वर का पद है, किस दृष्टान्त से? कि जैसे आकाश में "चक्षुः" नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "दिवीव, चक्षुराततम्"

* देखो फुट नोट पृष्ठ ७॥ (सम्पादक)

परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एक रस भर रहा है। वही परमपद स्वरूप परमात्मा परमपद है। इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखोंसे छूटता है, अन्यथा जीवको कभी सुखनहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ॥ २१ ॥

प्रार्थना विषय

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २२ ॥
१ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान—(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि, हे जीवो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बंदूक) धनुष, बाण, करवाल (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों । किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें । "उत प्रतिष्कभे"

शत्रुओं के वेग को थामने के लिये। "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो, जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो, परन्तु "मा मर्त्यस्य मायिनः" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट,पापी ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढो*, उसका पराजय ही सदा हो। हे बंधुवर्गो ! आओ अपने सब मिलके सर्वदुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें, जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥

---

* शत्रु से तात्पर्य दुष्ट पापी आदि है, यह यहां स्पष्ट है। (सम्पादक)

स्तुति विषय

विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥२३॥
१।२।७।१९॥

व्याख्यान—हे जीवो! "विष्णो" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो। (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म हैं ? (उत्तर) 'यतोव्रतानि पस्पशे' जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्य भाषणादि व्रत, और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी होके समर्थ हुए हैं। यह काम उसी के सामर्थ्य से

है। क्योंकि "इन्द्रस्य युज्यः सखा" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं, क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सक्ता इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिए ॥२३॥

प्रार्थना विषय

परां णुदस्व मघवन्नमित्रां-

न्त्सुवेदां नो वसूं कृधि ।

अस्माकं बोध्यविता महाधने

भवा वृधः सखीनाम् ॥ २४ ॥

५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान—हे मघवन् परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त करदे । हे दातः ! "सुवेदा, नो, वसू, कृधि," "अस्माकं,बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ (सुखसे प्राप्त) कर । "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव" आप ही

हो, तथा "बोधि" हमको अपने ही जानो। हे भगवन् ! जब आप हमारे रक्षक योद्धा * होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा इसमें सन्देह नहीं ॥२४॥

* युध संप्रहारे-योद्धा अर्थात् दुष्टों के संहारक। (सम्पादक)

प्रार्थना विषय

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु
शं नः पुरंन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः
शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२५॥
५ । ३ । २८ । २ ॥

व्याख्यान—हे ईश्वर ! "भगः" आप और आप का दिया हुआ ऐश्वर्य "शं नः" हमारे लिए सुखकारक हो "शमु, नः, शंसो अस्तु" आपकी कृपासे हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो। "पुरन्धिः शमु सन्तु रायः" संसारके धारण करने वाले आप तथा वायु, प्राण और सब धन आनन्ददायक हों । "शन्नः, सत्यस्य (सुयमस्य शंसः)" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियादिलक्षणयुक्त

जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिए हो । "शं नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्त सामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ॥२५॥

स्तुति विषय

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य ।
अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २६ ॥
५ । ८ । ३५ । २ ॥

व्याख्यान—हे "अग्ने" सर्वज्ञ ! तू ही सर्वत्र "प्रशस्य:" स्तुति करनें के योग्य है, अन्य कोई नहीं । "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आपही स्तोतव्य हो। जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है । 'सहन्त्य" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो । "रथी:" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो । हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हो, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

प्रार्थना विषय

तन्न॒ इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्नि-
राप॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ जुषन्त ।
शर्म॑न्त्स्याम म॒रुता॑मु॒पस्थे॑
यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥२७॥

५ । ३ । २७ । २५ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् !"तन्न इन्द्रः" सूर्य "वरुण" चन्द्रमा, "मित्रः" वायु "अग्निः" अग्नि "आपः"जल "ओषधीः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आप की आज्ञा से सुख रूप होकर हमारा सेवन करें*। हे रक्षक !"मरुतामुपस्थे"प्राणादि के सुसमीप बैठे हुए हम आपकी कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहें।

---

* अर्थात् हमें प्राप्त हों। (सम्पादक)

"स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थे बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो। किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ॥२७॥

स्तुति विषय

ऋषि॒र्हि पू॑र्व॒जा अस्येक॒ ईशा॑न॒ ओज॑सा ।
इन्द्र॑ चोष्कू॒यसे॒ वसु॑ ॥२८॥ ५।८।१७।४१॥

व्याख्यान—हे ईश्वर! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सब के पूर्वजों के एक अद्वितीय "ईशान" ईशनकर्त्ता (अर्थात् ईश्वरता करने हारे) तथा सब से बड़े प्रलयोत्तरकाल में आपही रहने वाले, "ओजसा" अनन्तपराक्रम से युक्त हो। हे इन्द्र महाराजाधिराज ! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो। आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ॥२८॥

प्रार्थना विषय

नेह भ॒द्रं र॑क्ष॒स्विने॒ नाव॒यै नोप॒याऽउ॒त ।
गवे॑ च भ॒द्रं धे॒नवे॑ वी॒राय॑ च श्रव॒स्य॒तेऽ-
ने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥२९॥
८ । ४ । १ । १२ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! "रक्षस्विने भद्रं, नेह" पापी हिंसक दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना । "नावयै" धर्म से विपरीत चलने वाले को सुख कभी मत हो । तथा "नोपया उत" अधर्मी के समीप रहने वाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो । ऐसी प्रार्थना आपसे हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिए, नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि ही न करेगा, किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये ।

हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियां, दुग्ध देने वाली गौ आदि, वीर पुत्र और शूर वीर भृत्य "अवस्यते" विद्या विज्ञान और अनाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्यजन तथा इनके लिए "अनेहसः" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख हो । "व ऊतयो व ऊतयः" (वः युष्माकं, बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर ! आप सब रक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं के रक्षक हैं । जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव "भद्र" कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है अन्य को नहीं ॥२९॥

— —

स्तुति विषय

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः ।
स्याम ते सुमतावपि ॥३०॥
६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान - हे परमात्मन् ! आप वसु अर्थात् सबको अपने में बसाने वाले और सब में आप बसने वाले हो । तथा "वसुपतिः" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो । 'कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ! आप ही सबके सुखकारक और सुखस्वरूप हो । तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशैकघनमय हो । हे भगवन् ! ऐसे जो आप, उन "ते" आपकी "सुमतौ" अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥ ३० ॥

प्रार्थना विषय

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम
राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे
वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥३१॥

१ । ७ । ६ । १ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा, सब भुवनों का स्वामी "कम्" सब का सुखदाता और "अभिश्रीः" सबका निधि (शोभा-कारक) है । 'वैश्वानरो यतते सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं । "इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी

ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है। "वैश्वानरस्य सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की सुमतौ अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट) ज्ञान में हम निश्चित सुख स्वरूप और विज्ञान वाले हों। हे महाराजधिराजेश्वर! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ॥३१॥

स्तुति विषय

न यस्य देवा देवता न मर्त्ता
आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३२॥

१।७।१०।१५॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवा" इन्द्रिय 'देवताः" विद्वान् सूर्यादि तथा बुद्धयादि "न, मर्त्ताः" साधारण मनुष्य 'आपश्च"आप, प्राण वायु, समुद्र इत्यादि सब "अन्त" पार कभी नहीं पा सकते किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक हो के अतिरिक्त (इनसे विलक्षण) भिन्न ही

परिपूर्ण हो रहा है। सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल से "क्ष्मः" पृथिवी को "दिवञ्च" स्वर्ग को धारण करता है सो "इन्द्रः" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो॥३२॥

प्रार्थना विषय

जातवेदसे सुनवाम सोम-
मरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा
नावेव सिंधुं दुरितात्यग्निः ॥३३॥१।७।७।१॥

व्याख्यान—हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जानने वाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो, जो विद्वानों से ज्ञात सब में विद्यमान "जात" अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इस से आपका नाम जातवेद है. उन आप के लिये "वयं, सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय गुण विशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब आपके ही लिए हैं*। सो आप हे कृपालो!

---

* देखो टिप्पणी नं० २ पर। (सं०)

"अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेदः" धनैश्वर्यादि का "नि दहाति" नित्य दहन करो, जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करे। सो 'नः" हम को "दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुखको प्राप्त करो *। "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र पार होने के लिए नौका होती है "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हमको सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परमसुखको शीघ्र प्राप्त करो‡ ॥३३॥

---

* प्रभु के प्रति प्रेम का अतिशय और समर्पण भाव प्रकट किया है।

‡ उभयत्र देखो टिप्पणी नं० २ पर। (सं०)

स्तुति विषय

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३४॥

१ । ७ । १० । १२ ॥

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन्! आप "वज्रभृत्" अच्छेद्य (दुष्टोंके छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्ट-विनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो, "प्राणो वा वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है । अतएव 'दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो । "भीमः" आपकी*

---

* सामान्य भाषा में आप अपनी (सं०)

न्याय आज्ञा को छोड़ने वालों पर भयङ्कर भय देने वाले हो। "सहस्र-चेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो। "शतनीथः" सैंकड़ों, असंख्यात (पदार्थों) की प्राप्ति कराने वाले हो। "ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाश वाले हो और सबके प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबल वाले हो। "न, चम्रीषः" किसी की चमू (सेना) में वशको प्राप्त नहीं होते हो। "शवसा, पाञ्चजन्यः" स्वबलसे आप "पाञ्चजन्यः" पांच प्राणों के जनक हो। "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो। सो आप "इन्द्र" हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों जिससे हमारा कोई काम बिगड़े नहीं ॥३४॥

प्रार्थना विषय

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम स्वाध्यः ॥३५॥

१।१।३१।९॥

व्याख्यान—हे "शतक्रतो" अनन्त-क्रियेश्वर! आप असंख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियाबल-युक्त हो। सो आप "गोभिरश्वैः" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विमानादियुक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्य से "सेमं नः काममापृण" हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम

प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें। हमको दृढ़ निश्चय है कि आप के विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आप को छोड़ के दूसरे का ध्यान व याचना जो करते हैं उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं॥ ३५॥

स्तुति विषय

सोम॑ गी॒र्भिष्ट्वा॑ व॒यं व॒र्द्धया॑मो वचो॒विदः॑ । सु॒मृ॒ळी॒को न॒ आ वि॑श ॥३६॥

१ । ६ । २१ । ११ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आपको "वचोविदः" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयामः" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं । "सुमृडीकः, नः, आविश" क्योंकि हमको सुष्ठु सुख देने वाले आप ही हो, सो कृपा करके हमको आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त हो के आनन्दित हों ॥३६॥

—०—

प्रार्थना विषय

सोमं रारन्धि नो हृदि गावो न यवं-
सेष्वा । मर्य्य इव स्व ओक्ये ॥३७॥
१ । ६ । २१ । १३ ॥

व्याख्यान हे "सोम" सोम्य सौख्य-प्रदेश्वर ! आप कृपा करके "रारन्धि, नः, हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो । (दृष्टान्त) जैसे सूर्य की किरण विद्वानों का मन और गाय, पशु अपने२ विषय और घासादि में रमण करते हैं,* वा जैसे "मर्यः, इव, स्वे, ओक्ये" मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा)में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ॥३७॥

* दृष्टान्त का एक देश रमणमात्र लेना ॥ (म०)

स्तुति विषय

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः।
सुमित्रः सोम नो भव ॥३८॥
१ । ६ । २१ । १२ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो! अपना * इष्ट जो परमेश्वर, सो "गय-स्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य बढ़ाने वाला है, तथा "अमीवहा" शारीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन (विनाश) करने वाला है। "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जानने वाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है, "पुष्टिवर्धनः" अपने† शरीर, इन्द्रिय मन और आत्मा

* सामान्य भाषा में—हमारा। (सं०)
† सामान्य भाषा में—हमारे। (सं०)

की पुष्टि का बढ़ाने वाला है। "सुमित्रः, सोम, नः, भव" सुष्ठु, यथावत् सबका परममित्र वही है। सो अपने* उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आपसे ही रक्खें ॥३८॥

* सामान्य भाषा में—हम। (सम्पादक)

प्रार्थना विषय

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥३९॥

१ । ७ । ५ । ६ ॥

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन् ! "त्वं हि" तू ही "विश्वतः परिभूरसि" सब जगत् में सब ठिकानों में व्याप्त हो, अतएव आप विश्वतोमुख हो । हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप (स्वमुख) स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो । वही आपका मुख है । हे कृपालो ! "अप, नः, शोशुचदघम्" आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय, जिससे हम लोग निष्पाप हो के आपकी भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें ॥३९॥

स्तुति विषय

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं

विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।

ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं

देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४०॥

१ । ७ । ३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमीळत" अग्नि की स्तुति करो, कैसा है वह अग्नि "प्रथमम्" सब (कार्यों) से पहिले वर्त्तमान और सबका आदि कारण है, तथा "यज्ञसाधम्" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सबका जनक है । हे "विशः"

मनुष्यो ! उसी को ही स्वामी मानकर "आशी:" प्राप्त होओ, जिसको हम दीनता से पुकारते हैं, और जिसको विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं और जानते हैं। "ऊर्जः, पुत्रं भरतम्" पृथिव्यादि जगत्‌रूप अन्नका पुत्र अर्थात् पालन करने वाला, तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करने वाला है। "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलने की शक्ति देने वाला और ज्ञान का दाता है। उसी को "देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते* हैं। वही सब जगत् को द्रविण अर्थात्

---

* सामान्य भाषा में—अग्नि कहते और उसको धारण करते हैं। (सं०)

निर्वाह के सब अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देने वाला है। उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी हिए ॥४०।

प्रार्थना विषय

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ
तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य क_णस्येश एको
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४१॥
१।७।६।७॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमूतयः" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को* 'ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। "शूरसातौ" युद्ध में अपने को यथावत् "रणयन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा। "तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूर-

* सामान्य भाषा में—हमें। (सं०)

वीर मनुष्यो ! उसी को क्षेम कुशलता का "शर्म" रक्षक "कृण्वत"करो, जिससे अपना * पराजय कभी न हो। क्योंकि, "सः, विश्वस्य" सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करने वाला "एकः" एक ही है अन्य कोई नहीं। सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, ईश्वर से रक्षित हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों ॥४१॥

---

* सामान्य भाषा में—हमारा। (सं०)

स्तुति विषय

स पूर्वया निविदा कव्यतायो-
रिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा
अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४२॥

१ । ७ । ३ । २ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! सो ही "पूर्वया, निविदा" आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त अग्नि ही परमात्मा था, अन्य कोई नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) करता भया * ['"कव्यतायो०" सर्वज्ञतादि

*यह आगे का १२ पंक्तियों का ब्रैकट के अन्दर वाला पाठ आर्याभिविनय के आजकल के मुद्रित

सामर्थ्य से ही सत्यविद्यायुक्त वेदों की, तथा "मनूनां" मननशील वाले मनुष्यों की, तथा अन्य पशुवृक्षादि की "प्रजाः" प्रजा को "अजनयत्" उत्पन्न किया, परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार

संस्करणों में नहीं मिलता परन्तु यह पाठ होना अवश्य चाहिए क्योंकि इन संस्करणों में इस मन्त्र के अर्थ में "कव्यतायो...... अपः" मन्त्र के इतने भाग का अर्थ नहीं मिलता।

यह सारा पाठ आर्य्याभिविनय के प्रथम और द्वितीय संस्करण में जैसे का तैसा विद्यमान है। इसलिये प्रतीत होता है कि यह पाठ किसी संस्करण के छपते समय कम्पोज़ीटर से छूट गया है और फिर ऐसे ही छपता गया है। इससे हमने इस पाठ को रखना ही उचित समझा है।

(सम्पादक)

चलने के लिये, परन्तु मननशील वाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। "विवस्वता चक्षसा" सूर्यादि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशने वाला, बल से, स्वर्ग (सुख विशेष) सब लोक "अपः" अन्तरिक्ष में पृथिव्यादि मध्यम लोक] और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं, जो ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर देव है। उसी "द्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देने वाले को ही "देवाः" अग्नि जानते हैं । हम लोग उसी को ही भजें ॥४२॥

प्रार्थना विषय

वयं जयेम त्वया युजा वृत-
मस्माकमंशमुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि
प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४३॥
१।७।१४।४॥

व्याख्यान—हे इन्द्रपरमात्मन्! "त्वया युजा, वयं, जयेम" आपके साथ वर्त्तमान, आपके सहायसे हम लोग दुष्ट शत्रुओंको जीतें। कैसा वह शत्रु? कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर! "भरे-भरे अस्माकमंशमुदवा" युद्ध २ (प्रत्येक युद्ध में) में हमारे अंश (बल) सेना का "उदव" उत्कृष्ट रीति से कृपा करके रक्षण करो,

जिस से किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों। किन्तु जिनको आपका सहाय है उन का सर्वत्र विजय ही होना है। हे ' इन्द्रमघवन्" महाधनेश्वर ! "शत्रूणां, वृष्ण्या" हमारे शत्रुओं के (वीर्य्य) पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न-रुग्ण करके नष्ट कर दे। "अस्मभ्यं वरिवः,सुगं, कृधि:"हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धनको "सुगम्" सुखसे प्राप्त कर* अर्थात् आपकी करुणा कटाक्ष से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥४३॥

---

* देखो टिप्पणी मन्त्र २ ॥ (सं०)

स्तुति विषय

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति-
र्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४४॥
१ । ७ । १२ । ५ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और "प्राणतः" चेतना वाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है, तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है । और "ब्रह्मणे, गाः, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है । और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा

डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है, तथा उनको मार ही डालता है। "मरुत्वन्तं, सख्याय, हवामहे" सो आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्त बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद् हो के पुकारें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥४४॥

प्रार्थना विषय

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥४५॥
१।८।५।२॥

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर! हमको "मृड" सुखी कर. तथा "मयस्कृधि" हमको मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादक कर। "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करने वाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करने वाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। "यच्छम्" हे रुद्र! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो,

हमारी सब प्रजा को सुखी कर, "योश्च" और प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे "मनुः" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा को संगत और अनेक विध लाडन करता है वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन् ! "तव, प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "तद्-श्याम" वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों॥ ४५॥

स्तुति विषय

देवो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या
उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो न राजा॑ ।
पु॒रः॒स॒दः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा
अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टेव॒ नारी॑ ॥४६॥
१।५।१९।३॥

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो ! "देवः, न" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य की नांई प्रकाश कर रहा है । "यः, पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रच के धारण कर रहा है, और "विश्वधायाः, उपक्षेति" विश्वधारकशक्ति का भी निवास देने और धारण करने वाला है, तथा जो सब जगत् का परम मित्र अर्थात् जैसे "प्रियमित्रो, न,

राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, अन्य कोई भी नहीं। "पुरःसदः, शर्मशदः, न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद् हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं), वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। जैसे "न वीराः" पुत्रलोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, वैसे ही जो परमात्माके भक्त हैं वे सदा सुखी ही रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त हो के निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की श्रद्धा से भक्ति करते हैं, जैसे कि "अनवद्या, पतीजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी स्त्री) रात दिन, तन, मन, धन से

प्रीतियुक्त हो के अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो ! ईश्वर की भक्ति करें और अपने* सब मिल के परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें ॥४६॥

*सामान्य भाषा में–हम सब···॥ "अपने सब" और इससे पूर्व 'भाई लोगो" ऋषि की भाषा शैली और महत्व का परिचय देते हैं। ऋषि की जन्म की भाषा गुजराती होते हुए भी उन्हों ने राष्ट्र भाषा के उद्धार के लिये ही अपने सब ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे। (सं०)

प्रार्थना विषय

सा मां सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो
द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्निविशते यदेजति
विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥४७॥
७।८।१२।२॥

व्याख्यान—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! "सा मा सत्योक्तिः" आपकी सत्य आज्ञा जिस का हमने अनुष्ठान किया है वह "विश्वतः, परि पातु नः" हमको सब संसार मे सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने को इच्छा भी न हो "द्यावा, च" दिव्य सुखसे सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। "यत्र" जिस सृष्टि में "अहानि" सूर्यादिकों को दिवस

आदि के निमित्त "ततनन्" आपने ही विस्तारे हैं, वहां † भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। "विश्वमन्य०" आपसे अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "निविशते" प्रवेश करता है। (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। "यदेजति" जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। "विश्वाहापो, विश्वाहा" जो २ विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आपके सामर्थ्य से

---

† "वहां" अर्थात् –उक्त सृष्टि में। (सम्पादक)

सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है ? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान्) हो रहे हो । (सूर्य्यवत्) हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥ ४७ ॥

—o—

स्तुति विषय

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो
वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने
सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४८॥
१ । ६ । ३१ । १३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा कैसा है ? कि हम लोग उसकी स्तुति करें । हे अग्ने परमेश्वर ! आप "देवः, देवानामसि" देवों (परम विद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो, तथा उनको परमानन्द देने वाले हो । तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्यरूप मित्र सर्वसुखकारक सबके सखा हो । "वसुः०" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास कराने वाले हो ।

तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारुः" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देने वाले हो। हे परमात्मन्! "सप्रथस्तमे सख्ये,शर्मणि तव" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में, हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख प्राप्त न हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों॥ ४८॥

प्रार्थना विषय

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒
मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः
आ॒ण्डा मा नो मघवञ्छक्र॒ निर्भे॑न्
मा नः॒ पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि ॥४९॥
१।७।१९।८॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर ! "मा नो, वधीः" हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावे। "मा परा दाः" हमसे अलग आप कभी मत हो। "मा नः प्रिया०" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावे * "आण्डा मा०" हमारे गर्भों

* "मत चोर और चोरवावे"
मुष स्तेये क्रयादि परस्मैपद॥

यहां मूलमन्त्र में "प्रमोषीः" पद है। इस धातु का प्रयोग मूल वेद में अनेक स्थलों में आया है। यथा ऋ. १-२४-११ में "तत्वा यामि ब्रह्मणा......मा न आयुः प्रमोषीः" आयु को न्यून मत करो—आयु को अपहरण मत करो —यही अर्थ ठीक प्रतीत होता है। क्योंकि आयु की चोरी क्या होगी।

इसी प्रकार यहां पर भी—हमारे भोजनादि पदार्थों का अपहरण मत करो, यही अभिप्रेत अर्थ है जो आचार्य दर्शा रहे है।

इसी प्रकार यजु: १६-२१ में—

"मुष्णतां पतये नमो नमः" यहां पर भी अपहरण (क्योंकि दुष्टों से उत्तम २ पदार्थों का अपहरण (पृथक्) परमात्मा ही करते हैं) करने वालों में रुद्र को मुख्य कहा गया है।

अथर्व वेद ४-३४-४ में भी—

नैनान् यमः मुष्णाति रेतः ॥

उनके रेतः (निघण्टु—बलनामसु पठितम) बल को यम' नहीं चुराता।

अर्थात् अपहरण (पृथक्) नहीं करता। इत्यादि अनेक उदाहरण समझें।

अपहरण का अर्थ 'पृथक् करना' भी है यथा:— "सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:" —

अर्थात् मल के पृथक् करने वाले।

हम देखते हैं कि एक मनुष्य पाप से ख़ूब धन कमाता है। उस पाप की कमाई से वह मोटर ख़रीद लेता है, बड़े २ महल खड़े कर लेता है, दर्जनों नौकर रख लेता है, कई कम्पनियों का डॉरेक्टर बन जाता है, अधिक से अधिक ऐश्वर्य की सामग्री उपस्थित कर लेता है। परन्तु यह सब लोगों को धोखा दे देकर, जनता को ठग कर और ग़रीबों का ख़ून नचोड़ कर। लोग

कहते हैं कि दुनियां में पापी बड़े सुखी रहते हैं। परन्तु वह कर्म का फल देने वाला रुद्र तो सब कुछ देखता है।

समय आता है पाप का भाण्डा भर जाता है, उसकी कम्पनियां टूटने लगती हैं, उसपर कर्ज़ा हो जाता है, खर्च बहुत बढ़ा हुआ है, वह कर्ज़ा चुका नहीं सकता घर का सामान नीलाम हो जाता है, मोटरें नहीं रहतीं; मकान भी नीलाम हो जाते हैं या दैव योग से मकान को आग लग जाती है। उसपर भयङ्कर रोग का आक्रमण हो जाता है, जो रुपया कहीं छिपा कर रक्खा था, वह डाक्टरों की जेब में चला जाता है कल जो पाप की कमाई से करोड़ पति बना हुआ था, आज वह रोटी के लिए भूखा मर रहा है। बस यही परमात्मा की चोरी (अपहरण) है।

इस मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की है कि, प्रभो !

का विदारण * मत कर। हे "मघवन्"

कृपा करो, हमारी प्रवृत्ति धर्म की ओर हो, हम ऐसे पापों से सदा बचे रहें जिनके कारण आप हमारे प्रिय भोगों का अपहरण करते है।

(सम्पादक)

* "गर्भों का विदारण मत कर"

गर्भों का विदारण तभी होता है, यदि पुरुष ऋतुगामी न हो और पुरुष स्त्री गृहस्थ के नियमों का पालन न करें। सन्तानोत्पत्ति के लिये जो नियम शास्त्र ने बताए हैं उनका उल्लघन करें।

इस मन्त्र में एक गृहस्थ प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! मैं गृहस्थ के नियमों का पालन करूं, ऋतुगामी होऊं, शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन न करूं, गर्भों का विदारण न हो और अच्छी सन्तानें उत्पन्न हों। (सम्पादक)

सर्वशक्तिमन् "शक्र" समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। "मा नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर। "सहजानुषाणि" जो २ हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ॥४९॥

प्रार्थना विषय

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं
मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम् ।
मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं
मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः ॥५०॥
१ । ८ । ६ । ७ ॥

व्याख्यान—हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर! आप हम पर कृपा करो । "मा, नो, व०" हमारे ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो । तथा 'मानो अर्भकम्' छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो । तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो ॥५०॥

स्तुति विषय

मा नंस्तोके तनंये मा नं आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नों रुद्र भामितो वंधी-
र्हविष्मंन्तः सदमित्त्वां हवामहे ॥८१॥
१।८।६।८॥

व्याख्यान— "मा, नः, तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना में "हवि-ष्मन्तः" यज्ञ के करने वाले, इन में "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो।

हम लोग आपको "सदमित्त्वा, हवामहे" सर्वदैव आह्वान करते हैं। हे भगवन् रुद्र परमात्मन्! आप से यही प्रार्थना है कि, हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥५१॥ *

आर्याभिविनय के मुद्रित अजमेरीय संस्करणों में यह मंत्र ५०वें मंत्र के साथ इकट्ठा छपा हुआ है और अर्थ भी दोनों के इकट्ठे छापे गए हैं। हमने जनता के सुभीते के लिए और छपवाई के सौन्दर्य के लिये इन दोनों मन्त्रों का पृथक् २ कर दिया है। (सम्पादक)

प्रार्थना विषय

उद्गातेव शकुने साम गायसि
ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्यां
सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥५२॥
२।८।१२।२॥

व्याख्यान—हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप साम को सदा गाते हो * वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान † करो । जैसे यज्ञ में

* "आप साम······ हो"—अर्थात् परमात्मा के द्वारा ही विश्व में गान विद्या का प्रादुर्भाव हुआ है (सं०)

† अर्थात् वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्याओं को प्रकाशित करो। (सं०)

महापंडित सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का गान (प्रकाश) कीजिये। "ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु" आप कृपा से सवन (पदार्थ विद्याओं) की "शंससि" प्रशंसा करते हो, वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो। जैसे "ब्रह्मपुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है, वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये। आप "वृषेव वाजी" सर्वशक्ति का सेचन करने और अन्नादि पदार्थों के दाता तथा महाबलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो। जैसा कि वृषभ की नाईं आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करने वाले हो वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो। "शिशुमतिः" हम लोग आपकी कृपा से

उत्तम२ शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आपको ही भजें । "आ सर्वतो नः, शकुने" हे "शकुने" सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर ! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम्" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें । "विश्वतो, नः श०" हे सबको सुख देनेवाले ईश्वर ! सब जगत् के लिये "पुण्यम्" धर्मात्मक कर्म करने को "आवद" उपदेश कर जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करै और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो ॥५२॥

—०—

प्रार्थना विषय

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥५३॥
२।८।१२।३॥

व्याख्यान—"आवदंस्त्वं श०" हे शकुने जगदीश्वर! आप "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यवहारिक सुख के भी ऊपर मोक्ष सुख का निरन्तर उपदेश सब जीवों को कीजिये। "तूष्णीमासीनः सु०" हे अन्तर्यामिन् हमारे हृदय में सदा स्थिर हो, मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ। "चिकिद्ध नः" कृपा से हमको अपने

रहने के लिये घर ही बनाओ* और आप की परमविद्या को हम प्राप्त हों। "यदुत्पतन्वद०" उत्तम व्यवहार में पहुंचाते हुए आपका (यथा) जिस प्रकार से -"कर्कर्रिवदसि" कर्त्तव्य, कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो मत करो, ऐसा उपदेश है, कि पुरुषार्थ अर्थात यथायोग्य उद्यमको कभी कोई मत छोड़ो, जैसे "बृहद्वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीरः" अत्यन्त शूर वीर होके बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन 'वदेम" आपकी स्तुति,

---

* अर्थात् हम आपको अपने में व्यापक अनुभव करें। (सम्पादक)

आप का उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना तथा आप का यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें सुनें और आप के अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ॥ ५३ ॥ *

ओ३म महाराजधिराजाय परमात्मने नमो नमः

इति

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषांश्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण दयानन्दसरस्तीस्वामिना विरचित आर्याभिविनये प्रथमः प्रकाशः पूर्त्तिमागमत् ।

समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

---

*मन्त्र ५२ और ५३ के सम्बन्ध में मन्त्र ५१ की टिप्पणी देखें । (सम्पादक)

* ओ३म् *

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीय प्रकाशः

ओ३म् सहनाववतु सह नौ भुनक्तु ।
सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥
तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपा० ॥ १८ ॥
प्रथमानुवाकः ॥ १ ॥

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक

हों* आप की कृपा से हम लोग सदैव आप की ही स्तुति,प्रार्थना और उपासना कर तथा आप को ही पिता, माता, बंधु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद परमगुर्वादि जानें। क्षणमात्र भी आपको भूल के न रहें। आप के तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें। आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्,रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों। एक दूसरे का दुःख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान्, पाखण्ड रहित करें। "सह, नौ,

---

* सामान्य भाषा में इसका भाव है कि आप, हमारे रक्षक हों और हम (मनुष्य) लोग परस्पर प्रसन्नता से एक दूसरे के रक्षक हों।

(सम्पादक)

भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर परमानंद का भोग करें *

---

* यहां "आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें" का भाव आगे पढने से कुछ स्पष्ट होता है अर्थात् परमानन्द भोगने का भाव है कि 'हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें" और' "आप हमको अपने अनन्त परमानन्दके भोगी करें।'

इस मन्त्र के अर्थों में भाषा बनाने म कुछ गडबड सी भी प्रतीत होती है। यह ग्रन्थ महर्षि ने वैशाख १९३२ सं० में छपवाया था लिखा अवश्य १९३१ में गया होगा अर्थात् महाराज के देहान्त से ९ वर्ष पूर्व। यह सब लोग जानते हैं कि उस समय महर्षि भाषा लगभग सर्वथा नहीं जानते थे। प्रथम सत्यार्थ प्रकाश १९३२ सं० में ही छपा था, उसकी भाषा अशुद्ध थी, यह महर्षि स्वयं लिखते हैं—

"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था, इस से भाषा अशुद्ध बन गई थी"।

सत्यार्थ प्रकाश भूमिका।

इस से स्पष्ट है कि उन्हीं दिनों की लिखी हुई आर्याभिविनय की भाषा में भी अशुद्धि हो सकती है। इस लिए यहां "आप और" और इसी मन्त्र के अर्थों के आरम्भ का "आप और" शुद्ध भाषा के अनुसार यदि न हो तो भाव अधिक स्पष्ट हो जाता है क्योंकि आगे ऐसे ही पदों— "करवावहै" "तेजास्विनौ" "विद्विषावहै" का अर्थ हम लोग परस्पर बल बढ़ावें, तेजस्वी हों और द्वेष न करें, ऐसा किया गया है। इन अर्थों में

"आघ और" शब्द नहीं जोड़ा गया है।

इस ग्रन्थ के बनने के बाद जब संस्कार-विधि और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थों को ऋषि ने बनाया, उस समय महाराज भाषा बोलने लगे थे उन ग्रन्थों में ऋषि ने निम्न लिखित अर्थ किया है:—

"हम स्त्री पुरुष, सेवक स्वामी, मित्र मित्र, पिता पुत्रादि (सह) मिलके (नौ) हम दोनों प्रीति से (अवतु) एक दूसरे की रक्षा किया करें और (सह) प्रीति से मिल के एक दूसरे के (वीर्य) पराक्रम की बढ़ती (करवावहै) सदा किया करें। सं० विधि गृहस्थ प्रकरण।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका प्रथम पृष्ठ पर इसी मन्त्र का अर्थ ऐसे किया है:—

(सहनाव०) हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! आपकी कृपा रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक

हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें, उस आनन्द से हम लोगों को क्षणमात्र भी अलग न रक्खें।

दूसरे की रक्षा करें (सहनौ भुनक्तु) और हम सब लोग परमप्रीति से मिल के सब से उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्ती राज्य आदि सामग्री से आनन्द को आप के अनुग्रह से सदा भोगें।

इन तीनों लेखों को परस्पर मिलाकर पढ़ने से ऋषि का अभिप्राय स्पष्ट विदित हो जाता है।

आर्याभिविनय में भाव पूर्णतया स्पष्ट न होने का कारण भाषा की शैली ही हो सकती है। अथवा प्रैस के कृपालुओं की कृपा भी हो सकती है इस के आवश्यकता पडने पर प्रमाण भी उपस्थित किये जा सकते हैं। (सम्पादक)

"सह वीर्य्यं, करवावहै" आप के सहाय से परमवीर्य जो सत्यविद्यादि उस को परस्पर परमपुरुषार्थ से (प्राप्त) करें।

"तेजस्विनावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन्! आप की कृपा दृष्टि से हम लोगों का पठन और पाठन परमविद्या संसार में सब से अधिक प्रकाशित हों और अन्यान्य प्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों, और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातनमतस्थ हों, जिस से सब विद्वेष के मूल जो पाखंड मत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों।

"मा विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर ! आप के सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष, विरोध अर्थात् अप्रीति न रहै तथा हम लोग कभी परस्पर विद्वेष, विरोध न करैं, किन्तु सब (हम लोग) तन,मन,धन,विद्या,इनको परस्पर सबके सुखोपकारमें परमप्रीतिसे लगावें।

"ओ३म शांतिः, शांतिः शांतिः" हे भगवन् ! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं—एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होनेसे होता है; दूसरा आधिभौतिक ताप जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र चौरादिकों से सन्ताप होता है; और तीसरा जो मन इन्द्रिय,अग्नि,वायु, अतिवृष्टि,अनावृष्टि,अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है सो आधिदैविक ताप है। हे

कृपासागर ! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करें जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें।

हे विश्वगुरो ! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मङ्गलमय ! सब दुःखों से मुझ को छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर (सर्वदुःखेभ्यो मोचयित्वा सर्व सुखानि प्रापय *)(हे प्रजापते! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्म-वर्चसेन परमैश्वर्येण संजोजय)–हे प्रजा-

---

* यह पाठ आजकल के संस्करणों में नहीं है, परन्तु प्रथम और द्वितीय संस्करणों में है। (सम्पादक)

पते ! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व गवादि, उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्त्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर*। हे परमवैद्य ! (सर्वरोगात्पृथक्कृत्य नैरोग्यन्देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ाके परम नैरोग्य दे। हे महाराजाधिराज ! [मनसा, वाचा, कर्मणा, अज्ञानेन प्रमादेन वा यद्यत्पापं कृतं मया, तत्तत्सर्वं कृपया क्षमस्व ज्ञानपूर्वकपापकरणान्निवर्तयतु मां–मन से वाणी से और कर्म से अज्ञान वा प्रमाद से जो पाप किया हो किंवा करने का हो उस २ मेरे पाप को क्षमा कर (और) ज्ञानपूर्वक पाप करने से

* देखो प्रथम प्रकाश मन्त्र २ पर नोट।

(सम्पादक)

(भी) मुझको रोक दे]*, जिससे मैं शुद्ध होके आप की सेवा में स्थिर होऊं। (हे न्यायाधीश ! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेपूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ काम आदि

---

* यह सारा ब्रैकटों के अन्दर वाला पाठ आजकल के संस्करणों में नहीं है, परन्तु प्रथम और द्वितीय संस्करणों में है, इस लिये हमने यह पाठ रखना उचित समझा है। प्रतीत होता है किसी संस्करण के छपते समय यह पाठ कम्पाजिटर से छूट गया, और फिर वैसा ही छपता गया। (सम्पादक)

में यथावत मुझको स्थिर कर । मैं अत्यन्त दीन हो के यही मांगता हूं कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं । हे प्राण-पते,प्राणप्रिय, प्राणपितः प्राणाधार, प्राण-जीवन, स्वराज्यप्रद ! मेरे प्राणपति आदि आपही हो, मेरा सहायक आपके सिवाय कोई नहीं । हे राजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आप की ओर से स्थिर हो । आप के राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपा कटाक्ष स हमको शीघ्र ही कर । हे न्यायप्रिय ! हमको भी न्यायप्रिय यथावत कर । हे धर्माधीश हमको धर्म में स्थिर रख । हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता

अपने सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन करो *॥

---

* यह मन्त्र आचार्य ने द्वितीय प्रकाश की उपक्रमणिका स्वरूप दिया है, यह इस मन्त्र के व्याख्यान से स्पष्ट विदित है ।

(सम्पादक)

स्तुति विषय

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-
र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधा-
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

यजुर्वेदे । अध्याये ४०।८॥*

व्याख्यान—"स, पर्य्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है । "शुक्रम्" सब

---

* यह संख्या इस भाग में ऐसे ही होगी । आगे केवल अङ्क संख्या लिखी जायगी । जैसे—४०।८॥ से तात्पर्य ४०वां अध्याय और ८वां मन्त्र होगा । (सम्पादक)

जगत् का करने वाला वही है। "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता। वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार होने से देह धारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है। इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस, अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है, इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है, क्योंकि उस में छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता। "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर को कोई आवरण नहीं हो सकता। "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल

अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा तृषादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की उपासना करने वाला शुद्ध ही होता है, और मलिन का उपासक मलिन ही होता है। "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है। "कविः" त्रैकालज्ञ, (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता। "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सब के मन का दमन करने वाला है। "परिभूः" सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है। सब के ऊपर विराजमान है। "स्वयम्भूः" जिस का आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सबका आदिका-

रणादि है। "याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" उस ईश्वरने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्य-विद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपासे अविद्यान्धकार का नाशक वेद-विद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित किया है। और सबका आदिकारण परमात्मा है—ऐसा अवश्य मानना चाहिये। एवं विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को निश्चित मानना चाहिये। विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है। क्योंकि हम लोगों के लिये (उसने) सब पदार्थों का दान किया है, तो विद्या-दान क्यों न करेगा। सर्वोत्कृष्टविद्या

पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है, तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेद पुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत, वेदतुल्य वा अधिक नहीं है। अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थ प्रकाश" मेरे किये ग्रन्थ में देख लेना ॥ २ ॥

प्रार्थना विषय

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे,
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।३।।

३६ । १८ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर "दृते" हे दुष्टस्वभावनाशक ! विदीर्ण कर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश कर्म करने वाला मुझको मत रक्खो (मत करो), किन्तु उससे मेरे आत्मादि को उठा के विद्या सत्यधर्मादि शुभ गुणों में सदैव स्वकृपा सामर्थ्य से स्थित करो। "दृꣳह मा" हे परमैश्वर्यवन् भगवन् ! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विद्या विज्ञानादि दान से अत्यन्त

मुझको बढ़ा । "मित्रस्येत्यादि०" हे सर्व-सुहृदीश्वर सर्वान्तर्य्यामिन् ! सब भूत प्राणिमात्र मित्र की दृष्टि से यथावत् मुझको देखै । सब मेरे मित्र हो जांय । कोई मुझ से किञ्चिन्मात्र भी वैर दृष्टि न करें । "मित्रस्याहं, चेत्यादि" हे पर-मात्मन् ! आपकी कृपा से म भी निर्वैर होके सब भूत प्राणी और अप्राणी चरा-चर जगत् को मित्र की दृष्टि से स्वआत्म स्वप्राणवत् प्रिय जानूं । अर्थात् "मित्रस्य चक्षुषेत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारी मात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्तमान करै । अन्याय से युक्त होके कभी किसी पर भी न वर्त्तें । यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिये पर-मात्मा ने उपदेश किया है । सबको यही मान्य होने योग्य है ॥३॥

स्तुति विषय

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
॥ ४ ॥ ३२ । १ ॥

व्याख्यान—जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है ('ब्रह्म ह्यग्निः" शतपथे)। सर्वोत्तम ज्ञान स्वरूप, जानने के योग्य, प्रापणीय-स्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है। "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्व-जगत्कर्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मे-त्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं। "तदादित्यः" जिसका कभी

नाश न हो, और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है। "तद्वायुः" सब जगत का धारण करने वाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम वायु है। पूर्वोक्त प्रमाणसे "तदु चन्द्रमाः" जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देने वाला है, इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना। "तदेव शुक्रम्" वही चेतन स्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है। "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन सब से बड़ा है और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ाने वाला है। "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सर्वत्र व्याप्त होनेसे 'आप' नामक जानना। "सः

प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करने वाला है, अन्य कोई नहीं। उसी को हम लोग इष्ट-देव तथा पालक मानें, अन्यको नहीं ॥४॥

प्रार्थना विषय

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये
साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये ।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥५॥
३६ । १ ॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन् ! आप की कृपा से मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त (श्रवणयुक्त)हो के उसका वक्ता होऊं तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थसहित सत्यार्थ-मननयुक्त मनको प्राप्त होऊं । ऐसे ही सामवेदार्थनिश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊं । "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञान बल मुझको आप देवें , अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊं । "सहौजः"

शरीर बल नैरोग्यदृढ़त्वादिगुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं। "मयि, प्राणापानौ हे सर्वजन जीवनाधार! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) वे दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्यबल, पुष्टि, सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करने वाले हों उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त हो के आपकी कृपासे हे ईश्वर! सदैव सुखी हो के आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूं ॥५॥

स्तुति विषय

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशाना-
स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥६॥
य० ३२ । १० ॥

व्याख्यान—वह परमेश्वर हमारा "बन्धु" दुःखनाशक और सहायक है, तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता, तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता, (पूर्ण काम की सिद्धि करने वाला) वही है। सब जगत् का भी विधाता (रचने और धारण करने वाला) एक परमात्मा ही है अन्य कोई

नहीं। "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" सब धाम अर्थात् अनेक लोकलोकान्तरों को रचके अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है। वह कौन परमेश्वर है ? कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वांꣳसो हि देवाः। शतपथब्रा०) अमृत मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में सदैव रहते हैं*। "तृतीयेत्यादि" एक स्थूल जगत् (पृथिव्यादि) दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण) सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में "अध्यैरयन्त" धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा से) वर्तते हैं। सब

---

* देखो टिप्पणी पृष्ठ ७, ८, ६ ।। (सं०)

बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध होके देशकाल वस्तु का परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में सदा रहते हैं उससे जन्म मरणादि दुःख-सागर में कभी नहीं गिरते ॥ ६ ॥

प्रार्थना विषय

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

॥७॥ ३६ । २२ ॥

व्याख्यान—हे महेश्वर, दयालो ! जिस जिस देश से आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा करते हो † उस २ देश से हमको अभय करो अर्थात् जहां २ से हमको भय प्राप्त होने लगे वहां २ से सर्वथा हम लोगोंको अभय (भय-रहित) करो, तथा प्रजा से हमको सुख

---

† अर्थात् जहां २ सृष्टि में आप के द्वारा चेष्टा होती है । (सम्पादक)

करो। हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहै, भय देने वाली कभी न हो, तथा पशुओं से भी हमको अभय करो। किञ्च किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आप की कृपा से कभी न हो। जिससे हम लोग निर्भय हो के सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य * तथा आप की भक्ति करें ॥७॥

* अर्थात् आपका प्रदान किया राज्य भोगें तथा...... .. (सम्पादक)

स्तुति विषय

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥
३१ । १८ ॥

व्याख्यान—सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरिशयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है। उस पुरुष को मैं जानता हूं अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें। उसको कभी न भूलें, अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है? कि—'महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं

है । "आदित्यवर्णम्" आदित्य का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है, तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है । किंच "तमसःपरस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है, तथा स्वभक्त, धर्मात्मा, सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्यः करने वाला वही परमात्मा है । विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता । "तमेव विदित्वेत्यादि०" उस परमात्मा को जान के ही जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सकता है अन्यथा नहीं । क्योंकि 'नाऽन्य,पंथा, विद्यतेऽयनाय" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है । ऐसी परमात्मा की

दृढ़ आज्ञा है। सब मनुष्यों को इसमें वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥८॥

— —

प्रार्थना विषय

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥६॥
१९ । ९ ॥

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश ! अनन्ततेज! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्यविज्ञान तेजःस्वरूप हो । आप कृपा-दृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो, जिस से मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं । हे अनन्तवीर्य पर-मात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप

सर्वोत्तम् बल स्थिर मुझ में भी रक्खें। हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो, सो मुझमें भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो। "हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् !" मुझ में भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ। हे अनन्तसहनस्वरूप ! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों, जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूं ॥ ९ ॥

स्तुति विषय

परीत्यं भूतानि परीत्यं लोकान्
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशंश्च ।
उपस्थायं प्रथमजामृतस्या-
त्मनात्मानमभि संविवेश ॥१०॥
३२ । ११ ॥

व्याख्यान—सब भूत, आकाश और प्रकृति से ले के पृथिवी पर्यन्त सब संसार में वह परमेश्वर व्याप्त हो के पूर्ण भर रहा है, तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उप· दिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कणका भी उसके बिना खाली नहीं । "प्रथम-जाम्" प्रथमोत्पन्न जीव सब संसार को

ही समझना। सो जीव* आदि अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या,

* आज कल की भाषानुसार 'जीव' का अर्थ प्राणी अर्थात् आत्मा और शरीर दोनों मिले हुए समझने चाहिएं। सामान्य भाषा में कहा भी जाता है, "बरसात में बहुत से जीव उत्पन्न हो जाते है," इस वाक्य का तात्पर्य यह कभी नहीं होता कि नए आत्मा उत्पन्न हो जाते हैं, इसका अर्थ स्पष्ट यही होता है कि आत्मा और शरीर मिले हुए (प्राणी) नए उत्पन्न हो जाते हैं। सशरीर प्राणियों के लिए जीव शब्द प्रयुक्त होता प्राय: देखा गया है। उपर्युक्त पाठ के शब्द यह हैं "सो जीव अपने आत्मा से" इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि जीव से तात्पर्य यहां आत्मा नहीं, बल्कि आत्मा और शरीर दोनों हैं। इसी प्रकार यहां प्रथमोत्पन्न जीव से तात्पर्य उन प्राणियों से है

श्रद्धा, भक्तिसे "ऋतस्य" यथार्थ सत्य-स्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् ज्ञान उपस्थित (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख हो के, उस

जो सृष्टि की उत्पत्ति के समय सबसे पहिले आत्माएं शरीरों को धारण करके प्रकट हुई थीं क्योंकि सब से पहिला कार्य उन आत्माओं और शरीरों का संयोग था अर्थात् शरीर संयुक्त हो कर प्रकट होना था, इसलिये उनको आदि कार्य कहा गया है।

आर्याभिविनय के आजकल के संस्करण इस के स्थान पर निम्न लिखित पाठ है—

"प्रथमजाम्" मुख्य प्राणी अपने आत्मा से सत्याचरण, विद्या…" परन्तु हमारा पाठ प्रथम और द्वितीय संस्करण के अनुकूल है। (सं०)

में प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूट के सदैव* उसी परमानन्द में रहता है ॥१०॥

* देखो टिप्पणी पृष्ठ ७, ८, ६ ॥ (सं०)

प्रार्थना विषय

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒

भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः ।

भग॒ प्र नो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒-

र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥११॥

३४ । ३६ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! परमैश्वर्यवन् ! "भग" ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आपही हो । तथा "भग प्रणेतः" आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं । आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ । सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्य वाले करें क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो । हे "सत्यराधः" भगवन् ! सत्यैश्वर्य

की सिद्धि करने वाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिये। जो मोक्ष कहाता है उस ऐश्वर्य का दाता आपसे भिन्न कोई भी नहीं है। हे सत्य-भग! पूर्ण ऐश्वर्य, सर्वोत्तम बुद्धि हम को आप दीजिये, जिस से हम लोग आप, आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान, इनको यथावत् प्राप्त हों। सो हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उदव" (उद्गमय-प्रापय) प्राप्त कर * जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत्

* इससे ऋषि की भाषा शैली का स्पष्ट पता लग रहा है। 'प्रापय' का अर्थ "प्राप्त करा" के स्थान पर 'प्राप्त कर' लिखा गया है। इसी प्रकार से अन्य स्थानों में भी लिखा है। (सं०)

जानैं। "भग प्र नो जनय" हे सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमारे लिये "भग" ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार से उत्पन्न कर। सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अनुत्तम (अत्युत्तम) ऐश्वर्य हमको सदा के लिये दीजिये। हे सर्वशक्तिमन्! आपकी कृपा कटाक्ष से सब दिन हम लोग उत्तम २ पुरुष, स्त्री और सन्तान भृत्य वाले हों आपसे हमारी अधिक यही प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हममें दुष्ट और मूर्ख न रहै, तथा न पैदा हो, जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्त्ति हो, और निन्दा कभी न हो ॥११॥

——

स्तुति विषय

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्तिके।

तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒

तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः॥ १२ ॥४०।५॥

व्याख्यान—"तद् (ब्रह्म) एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी २ चाल पर चला रहा है, सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा, परन्तु वह सब में पूर्ण है, कभी चलायमान नहीं होता। अतएव "तन्नैजति" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता, एकरस निश्चल होके भरा है। विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्मको

जानते हैं। "तद् दूरे" अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वरभक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्योंसे वह ईश्वर बहुत दूर है अर्थात् वे कोटि २ वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते। इससे वे जन्म-मरणादि दुःख-सागर में इधर उधर घूमते फिरते हैं। "तद्वन्तिके" सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषोंके "अन्तिके" अत्यन्त निकट है। किंच वह सबके आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है। सो आत्मा का भी आत्मा है, क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके बिना

खाली नहीं है। वह अखण्डैकरस सबमें व्याप रहा है उसी को जानने से ही सुख और मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥

प्रार्थना विषय

आयुर्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां, प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं, चक्षु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं, वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं, मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पताम॒ात्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पतां, ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ं, ज्योति॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ स्व॒र्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां, पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पतां, य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम् । स्तोम॑श्च यजु॑श्च ऋक् च॒ साम॑ च बृ॒हच्च॑ रथन्त॒रं च॑ । स्व॑र्देवा अगन्मा॒मृता॑ अभूम प्र॒जाप॑ते प्र॒जा अ॑भूम॒ वेट् स्वाहा॑ ॥१३॥१८।२९॥

व्याख्यान—(यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै ब्रह्मेत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रु०) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्योंका पूज्य इष्टदेव

उसके हेतु (उसके तथा उसके संग) अर्थ अतिश्रद्धा से (यज्ञ जो परमात्मा, उसके लिये) सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें—यही इस मंत्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर ! जो यह आप की आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें इस कारण हम लोग ''आयुः'' उमर, प्राण; चक्षु (आंख) कान वाणी, मन, आत्मा, जीव "ब्रह्म" तथा वेदविद्या और विद्वान् ज्योति (सूर्यादि लोक, अग्न्यादि पदार्थ) तथा स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो २ अच्छा काम हम लोग करते हैं) स्तोम, स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद चकार से अथर्ववेद,

बृहद्रथान्तर महारथान्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं। हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं। जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा हमारे लिये आप कीजिये। परन्तु हमलोग आपके सन्तान आप की कृपा से 'स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों। जब तक जीवैं, तब तक सदा चक्रवर्त्ती राज्यादि भोग से सुखी रहें, और मरणान्तर भी हम सुखी ही रहें। हे महादेवामृत! हम देव (परम विद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त होके जन्म मरण रहित अमृतस्वरूप सदैव रहें*। "वेट् स्वाहा" आपकी आज्ञा पालन और आप की प्राप्ति हो, जिससे

*देखो टिप्पणी पृष्ठ ७, ८, ९ (सं०)

उस क्रिया में सदा तत्पर रहें। तथा जो अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसाही सदा भाषण करैं, इससे विपरीत कभी नहीं। हे कृपानिधे! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आपही सदा करो। आप के सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले ॥१३॥

स्तुति विषय

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि
ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥१४॥

८।३६॥

व्याख्यान—जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना*। जो "विश्वा भुवनानि" सब भुवन (लोक) सब निवास स्थान असंख्यात लोकों को आवेश (प्रविष्ट) होके पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है। सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा

* अर्थात् वह परमात्मा कहाता है।(सं०)

में रम रहा है।"ओर्णीत्यादि"तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है, सब जगत् के व्यवहार और पदार्थ-विद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना। "स षोडशी" सोलह कला जिसने उत्पन्न की हैं इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे सोलह कला ये हैं-इक्षण (विचार) १, प्राण २, श्रद्धा ३, आकाश ४, वायु ५, अग्नि ६,जल ७, पृथिवी ८, इन्द्रिय ९, मन १०, अन्न ११, वीर्य (पराक्रम) १२, तप (धर्मानुष्ठान) १३,मन्त्र (वेद-विद्या) १४,कर्म (चेष्टा) १५, लोक लोकों में नाम १६, इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं। उसकी उपासना छोड़के जो

दूसरेकी उपासना करता है * वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता, किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ॥ १४ ॥

* "योऽन्यां देवतामुपासते पशुरेव स देवानाम् ।" श० १४ । ४ ॥ (स०)

स्तुति विषय

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥१५॥ ३ । २४ ॥

व्याख्यान—(ब्रह्म ह्यग्निः, इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त, श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अनुत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो । तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो । हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुखरूप वर्त्तमान सदैव कराओ, जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो । "स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय

पिता स्वपुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हमलोग बुरे होंगे तो उसकी शोभा आपको नहीं होना किञ्च सन्तानों को सुधारने मे ही पिता की बड़ाई होती है, *अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥

* यह हैं सच्चे ईश्वर भक्त के हृदय से निकले हुए प्यारे पिता प्रभु के प्रति सच्चे प्रेम के भाव। (सम्पादक)

स्तुति विषय

विभूरसि प्रवाहणः ।
वह्निरसि हव्यवाहनः ।
श्वात्रोऽसि प्रचेताः ।
तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥१६॥
५ । ३१ ॥

व्याख्यान हे व्यापकेश्वर ! आप विभु हो सर्वत्र प्रकाशित वैभवैश्वर्ययुक्त आपही हो किन्तु और कोई नहीं । विभु हो के सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलाने वाले) तथा सबके निर्वाहकारक भी आप हो । हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर ! आप वह्नि है । सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक आकर्षक तथा यथावत् स्थापक आप हो ।

हे आत्मन्! आप शीघ्र व्यापनशील हो। तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप, प्रकृष्ट ज्ञान के देने वाले हो। हे सर्ववित्! आप "तुथ" और "विश्ववेदा" हो, "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ कराने वाले हो॥ १६॥

प्रार्थना विषय

उशिगसि कविः ।
अङ्घारिरसि बम्भारिः ।
अवस्यूरसि दुवस्वान् ।
शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः ।
सम्राडसि कृशानुः ।
परिषद्योऽसि पवमानः ।
नभोऽसि प्रतक्वा ।
मृष्टोऽसि हव्यसूदनः ।
ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥१७॥

५ । ३२ ॥

व्याख्यान—हे सर्वप्रिय ! आप "उशिक्" कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं, क्योंकि आप "कवि" पूर्ण

विद्वान् हो,तथा आप 'अङ्घारि'' हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो, अर्थात् सर्व पापनाशक हो, तथा "बम्भारि:" स्वभक्तों और सर्व जगत् के पालन तथा धारण करने वाले हो। "अवस्युरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ स्वभक्त धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय (विद्वानों से परिचित) सेवनीयतम हो। "शुन्ध्यूरसि, मार्ज्जालीयः" शुद्ध-स्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो अन्य कोई नहीं। "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो। "परिषद्योसि

पवमानः" हे न्यायकारिन् ! पवित्र सभा-स्वरूप, सभा के आज्ञापक, सभ्य सभापति सभाप्रिय सभारक्षक आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप,पवित्र कारक,सभा से ही सुखदायक, पवित्र, प्रिय आपही हो। "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार ! आकाशवत् आप क्षोभरहित, अतिसूक्ष्म होने से आप का नाम नभ है, तथा "प्रतक्वा" सबके ज्ञाता, सत्यासत्यकारी, जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उसको वैसा मिले, अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले। "मृष्टोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्ध स्वरूप, सब पापों के मार्जक शोधक तथा "हव्य-सूदनः" मिष्ट,सुगन्ध, रोगनाशक, पुष्टि-

कारक, इन द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि करने, कराने वाले हो, अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो, इस से आप का नाम "हव्यसूदन" है। "ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन् ! आप का ही धाम, स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थस्वरूप है। यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो, मिथ्या में नहीं। "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा "ज्योतिः" स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही हो ॥ १७ ॥

स्तुति विषय

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः ।
अजोऽस्येकपात् ।
अहिरसि बुध्न्यः ।
वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि ।
ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम् ।
अध्वनामध्वपते प्र मा तिर
स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि
देवयाने भूयात् ॥ १८ ॥

५ । ३३ ॥

व्याख्यान–"समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप! सब भूतमात्र आप ही में द्रवें हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं। आप सबके कारण हो तथा (व्याज) सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है। इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं। "अजोस्येकपात्" आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो। "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। "वागस्यैन्द्रमसि सदोसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्त विद्यास्वरूप होने से आप ऐन्द्र हो। सब संसार आप में ठहर रहा है

इससे आप "सदः" (सभास्वरूप) हो। "ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्तासम्" सत्य-विद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आपकी प्राप्ति के द्वार हैं, उनको सन्ताप युक्त* हम लोगों के लिए कभी मत रक्खो, किन्तु सुख स्वरूप ही खुले रक्खो,† जिससे हम लोग सहज से आपको प्राप्त हों। "अध्वनामित्यादि" हे अध्वपते! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दे, किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द)

* अर्थात् वह द्वार बन्द होकर हमारे लिये सन्ताप के हेतु न बनें। (सं०)

† अर्थात् इस प्रकार खुले रक्खो कि हमें सुःख की प्राप्ति होती रहे। (सम्पादक)

ही आपकी कृपा से रहैं, किसी प्रकार का दु:ख हमको न रहै ॥१८॥ +

+ अजमेर के छपे संस्करणों में मन्त्र १६, १७ और १८ इकट्ठ छपे हैं, और उनके अर्थ भी इकट्ठ ही छपे हुए हैं। हमने पाठकों के सुभीते के लिये और छपाई के सौन्दर्य के लिये इन तीनों मन्त्रों को अलग २ कर दिया है। (सम्पादक)

स्तुति विषय

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
एनस एनसोऽवयजनमसि ।
यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार ।
यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसो·
ऽवयजनमसि ॥१९॥ ८ । १३ ॥

व्याख्यान—हे सर्वपापप्रणाशक! 'देवकृत०" इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जनके दुःखके नाशक आप एक ही हो,* अन्य कोई नहीं। एवं मनुष्य (मध्यस्थ-

---

* अर्थात् एक आप ही हो (सं०)

जन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और "आत्मकृत०" जीव के पापों तथा "एनस०" पापों से भी बड़े पापों से आप ही "अवयजन" हो अर्थात् सर्वपाप रहित हो, और हम सब मनुष्यों के भी पाप दूर करने वाले एक आप ही दयामय पिता हो। हे महानन्तविद्य ! जो २ मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो, उन सब पापों का छुड़ाने वाला आपके विना कोई भी इस संसार में हमारा † शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो ॥१९॥

† अर्थात् संसार में आपके विना और कोई नहीं है, जिसकी शरण में जा कर हम पापों से छूट सकें। आपकी शरण को प्राप्त करके ही हम पार उतर सकते हैं। (सं०)

स्तुति विषय

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२०॥
१३ । ४ ॥

व्याख्यान—जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्य्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति-स्थान उत्पादक) है, सो ही प्रथम था। वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्य्यन्त जगत् को रचके धारण करता है। "कस्मै" (प्रजापतये कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कस्तस्मै देवाय ।

शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करैं, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करैं। जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है, उस देश भर की दुर्दशा अत्यन्त होती है, यह बात प्रसिद्ध है, इससे चेतो। मनुष्यो! जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो, अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा ॥२०॥

— —

प्रार्थना विषय

इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥२१॥
३६ । ८ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो । हे रक्षक ! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उनके लिये परमसुखकारक हो ! तथा "चतुष्पदे" हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखकारक हो । जिस से हम लोगों को सदा आनन्द ही रहै ॥२१॥

स्तुति विषय

शं नो वातः पवताᳪं
शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः
पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥२२॥
३६ । १० ॥

व्याख्यान—हे सर्वनियन्तः! हमारे लिये सुखकारक, सुगन्ध, शीतल, और मन्द मन्द वायु सदैव चले । एवं सूर्य भी सुखकारक ही तपे । तथा मेघ भी सुखका शब्द लिये अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षे । जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहैं ॥२२॥

——

प्रार्थना विषय

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु न॒ः
शᳪ रात्री॑ः प्रति॑धीयताम् ।
शं न॑ इ॒न्द्राग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒ः
शं न॒ इ॒न्द्रावरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शं न॑ इन्द्रापूषणा॒ वाज॑साता॒ै
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शंयोः ॥२३॥

३६ । ११ ॥

व्याख्यान-हे क्षणादिकालपते ! सब दिवस आपके नियम से सुखरूप ही हमको हों। हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें। हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप धारण करो जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहैं। हे सर्वस्वामिन् ! "इन्द्राग्नी"

सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आपके अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों। "इन्द्रावरुण रातहव्या" हे प्राणाधार! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों। "इन्द्रपूषणा, वाजसातौ" हे प्राण-पते! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहें, जिससे शत्रुओं के सन्मुख हम निर्बल कभी न हों। "इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथादि में) हे महाराज! आप के प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त हो के अपने

ऐश्वर्य का उत्पादन करें। तथा आपकी कृपा से, परस्पर प्रीतियुक्त से, अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों, और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उसमें ही तत्पर हों ॥२३॥*

— —

* अजमेरीय संस्करणों में मन्त्र २१, २२ २३ इकट्ठे छपे है, उनके अर्थ भी इकट्ठे ही दिये गए हैं, हमने पाठकों के सुभीते के लिये और छपाई के सौन्दर्य के लिये इन तीनों मन्त्रों को पृथक् २ छपवा दिया है। (सम्पादक)

स्तुति विषय

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ।२४॥
३२।९॥

व्याख्यान—हे वेदादि शास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोष रहित) मुक्तों का धाम (निवासस्थान) सर्वगत सबका धारण और पोषण करने वाला, सबकी बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह गंधर्व कहाता है। (गच्छतीति गं = ब्रह्म, तद्धरतीति

स गन्धर्वः), सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करने वाला, उसका नाम गंधर्व है। तथा परमात्मा के तीन पद हैं—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य को, तथा ईश्वर को जो स्व-हृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है, अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है ॥२४॥

प्रार्थना विषय

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष(ं)शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिस्सर्व(ं) शान्तिश्शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ॥२५॥ ३६ । १७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करने वाले ! सब लोकों के ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे । अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, ओषधि, तत्रस्थगुण, वनस्पति, तत्रस्थ

पदार्थ, "विश्वेदेवाः" जगत् के सब विद्वान्, तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थगुण, ब्रह्म, परमात्मा, तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्व शक्तिमन् परमात्मन् ! आप की कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों। मुझ को भी वह शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आप की कृपा से शान्त, दुष्टक्रोधादि उपद्रव रहित होऊं तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्टक्रोधादि उपद्रव-रहित ही हों ॥ २५ ॥

स्तुति विषय

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च ।
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥२६॥
१६ । ४१ ॥

व्याख्यान—हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर ! आप शंभव हो (मोक्षसुखस्वरूप और मोक्षसुख के करने वाले हो) । आप को नमस्कार है । आप मयोभव हो, सांसारिक सुख के करने वाले आप को मैं नमस्कार करता हूँ । आप शंकर हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं । तथा मयस्कर अर्थात् मन, इन्द्रिय प्राण और आत्मा को सुख

करने वाले आप ही हो। आप शिव (मंगलमय) हो। तथा आप शिवतर (अत्यन्त कल्याण-स्वरूप और कल्याण-कारक) हो, इससे आपको हम लोग वारंवार नमस्कार करते हैं. (नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है, सो भी मङ्गलमय ही होता है ॥ २६ ॥

प्रार्थना विषय

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥
२५ । २१ ॥

व्याख्यान — हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र (कल्याण) को ही सुनें, अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारः ! हम आंखों से कल्याण (मंगल सुख) को ही सदा देखें। हे जनो हे जगदीश्वर ! हमारे सब अंग उपांग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपांग) स्थिर (दृढ़) सदा रहैं, जिनसे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और

आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें, जिससे हम लोग आत्मा, शरीर, तथा इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुख पूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें ॥ २७ ॥

स्तुति विषय

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ता-
द्विसीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ २८ ॥
१३ । ३ ॥

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो । आप से बड़ा वा (आप के) तुल्य कोई नहीं है । "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो । सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो । सूर्यादि लोक "सीमतः" सीमा से युक्त (मर्यादा सहित) "सुरुचः" आप से प्रकाशित हैं । "पुरस्तात्" इनको पूर्व रचके आपही धारण कर रहे

हो। (व्यावः) इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक् २ यथायोग्य वर्त्ता रहे हो। "वेनः" आप के आनन्द स्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आप की कामना न करे, किन्तु सब ही आप को मिला चाहते हैं। तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो। सब रीति से (आसमन्तात्) रक्षक आप ही हो। सो ही परमात्मा "बुध्न्या" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विवः" विवृत (विभक्त) करता है। वे अन्तरिक्षादि "उपमा" सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं। "सत्" विद्यमान् स्थूल जगत् "असत्" अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर, इस विविध जगत्

की "योनि" आदिकारण आपको ही वेदशास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। इससे इस जगत् के माता पिता आप ही हैं, हम लोगों का भजनीय इष्ट देव हो ॥२८॥

प्रार्थना विषय

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु, दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु, योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥२९॥

६ । ३२ ॥ ३६ । २३ ॥

व्याख्यान — हे सर्वमित्रसम्पादक ! आप की कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधि "सुमित्रियाः" सुखदायक हम लोगों के लिये सदा हों, कभी प्रतिकूल न हों। और जो हमसे द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है, तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन् ! उसके लिये "दुर्मित्रिया" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दुःखकारक ही हों। अर्थात् जो

सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है। चराचर "प्रथमच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रचके अनन्तस्वरूप से आच्छादित किया है। और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप (उसमें) प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है। वही हमारा निश्चित पिता है। उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य पाषाण मूर्त्यादि की सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है। और जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ॥३०॥

स्तुति विषय

इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व ।
ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व ।
द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व ।
धर्मासि सुधर्म । अमेन्यस्मे
नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय
क्षत्रं धारय विशंधारय ॥३१॥
३८ । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर ! हम को "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर। अन्न के अपचन के रोगों से बचा। तथा विना अन्न के दुःखी हम लोग कभी न हों। हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर। हे वेदो-

त्पादक! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बलसे सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश मे कभी न हों. तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। हे स्वर्गपृथिवीश! "द्यावापृथिवीभ्याम्"स्वर्ग(परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर। हे सुष्ठु धर्मशील! तू धर्मकारी हो, तथा धर्मस्वरूप ही हो। हम लोगों को भी कृपासे धर्मात्मा कर। "अमेनि" तुम निर्वैर हो, हमको भी

निर्वैर कर। तथा कृपादृष्टि से "अस्मे" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दुःखी न हों। हे सर्वाधिपते! ब्राह्मण (पूर्णविद्यादिसद्गुणयुक्त) क्षत्र (बुद्धि विद्या तथा शौर्यादिगुणयुक्त) "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि वस्तुयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त, ये सब स्वदेशभक्त उत्तम हमारे राज्य में हों। इन सबका धारण आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे ॥२१॥

स्तुति विषय

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं
कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा
विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥३२॥
१७ । १८ ॥

व्याख्यान—(प्रश्नोत्तर विद्या से) इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण तथा उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करने वाले ईश्वर का अधिष्ठानादि क्या है ? तथा निमित्त-कारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं ? (उत्तर) 'यतः'' जिसका विश्व

(जगत् कर्म) किया हुआ है, उस विश्व-कर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है। उसने अपने अनन्त-सामर्थ्य से इस सब जीवादि* जगत् को यथा योग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्गपर्यन्त रचके स्वमहिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है। और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं। सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही

---

* जीव से आशय यहां प्राणी वर्ग से है अर्थात् आत्मा और शरीर मिले हुए।

(सम्पादक)

करता है, तथा आनन्दमय है। वह ईश्वर कैसा है? कि "विश्वचक्षा" सब संसार का द्रष्टा है। उसको छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है वह दुःख सागर में क्यों न डूबेगा? ॥३२॥

प्रार्थना विषय

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ।
आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण ॥ ३ ३ ॥
३ । १७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है । सो शरीर को कृपा से पालन कर । हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले तथा रक्षक हो मुझको सुखरूप उत्तमायु दीजिए । हे अनन्त विद्यातेजः ! आप "वर्चः" विद्यादि तेज (प्रकाश) अर्थात् यथार्थविज्ञान देने वाले हो, मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ । पूर्वोक्त

शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो, और जो २ कुछ भी शरीरादि में "ऊनम्" न्यून हो, उस २ को कृपा दृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहै आप के पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे, तभी आप पिता की शोभा है * क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज़ अथवा सुख, पिता माता को छोड़ किससे मांगें ? सो आप सर्व-शक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देने वालों में पूर्ण हो ॥३३॥

---

* सच्चे ईश्वर भक्त के अतिप्रेम के यह उद्गार हैं। (सम्पादक)

स्तुति विषय

वि॒श्वत॑श्चक्षुरु॒त वि॒श्वतो॑मुखो
वि॒श्वतो॑ बाहुरु॒त वि॒श्वत॑स्पात् ।
सं बा॒हुभ्यां॒ धम॑ति॒ संपत॑त्रै-
र्द्यावा॒भूमी॑ ज॒नय॑न् दे॒व एक॑: ॥३४॥
१७ । १९॥

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) है, जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं है, तथा जिसके सर्वत्र मुख, बाहु, पग, अन्य श्रोत्रादि हैं । अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है । उसीसे जो डरेगा वही, धर्मात्मा होगा अन्यथा कभी नहीं वही विश्वकर्म्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है । पृथिवी से लेके स्वर्ग-

पर्यन्त जगत् का कर्त्ता है। जिस २ ने जैसा पाप वा पुण्य किया है उस २ को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्तबल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होने वाले सुख दुःख फल दान से सब जीवों को "धमति" (धमन = कम्पन) यथा योग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है। उसी निराकार अज अनन्त सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिए। वही याचनीय, पूजनीय हमारा प्रभु और स्वामी इष्टदेव है। उसी से सुख हमको होगा, अन्य से कभी नहीं ॥३४॥

स्तुति विषय

भूर्भुवः स्वः, सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्य प्रजां मे पाहि ।
शᳬंस्य पशून्मे पाहि ।
अथर्य पितुम्मे पाहि ॥३४॥ ३ । ३७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो । "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले" "स्वः" सुखरूप लोक के रचने वाले हो, हमको तीन लोक का सुख दीजिये । हे सर्वाध्यक्ष ! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्रादि उत्तम गुण वाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजा वाला होऊं, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी

होऊं। हे महापुष्टिप्रद ! आप के अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोम ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि से सर्वपुष्टि-युक्त होऊं। हे "नर्य" नरों के हितकारक मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर। हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो। हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर ! "पितुम्" मेरे अन्न की रक्षा कर। हे दयानिधे ! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण सब दिन आप आनन्द में रक्खो ॥३५॥

स्तुति विषय

किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्य-
दध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥३६॥
१७।२०॥

व्याख्यान—(प्रश्न) विद्या क्या है ? वन और वृक्ष किसको कहते हैं ? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ रचता है, वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि मध्य सुख वाला लोक तथा नरक (दुःख विशेष) और सब लोकों को रचा है, उसी को वन और वृक्ष कहते हैं । हे "मनीषिणः"

विद्वानो ! जो सब भुवनों को धारण कर के सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो । "मनसा" उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है अन्यथा नहीं ॥३६॥

— —

प्रार्थना विषय

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदःशतꣳ-
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः
शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३७ ॥

३६।२४॥

व्याख्यान—वह ब्रह्म "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिए वा मन आदि इन्द्रियों के लिए हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है। "पुरस्तात्" सबका आदि प्रथम कारण वही है। "शुक्रम्" सबका करने वाला किंवा शुद्धस्वरूप है। "उच्चरत्" प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है। उसी की कृपा से

हम लोग (१००) वर्ष तक देखैं, जीवैं, सुनैं, कहैं, किसी के पराधीन न हों। अर्थात् ब्रह्मज्ञान, बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहैं। ऐसी कृपा आप करें कि कोई अंग मेरा निर्बल (क्षीण) तथा रोगयुक्त न हो तथा १०० वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि १०० वर्ष के उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहैं और स्वाधीन ही रहैं ॥ ३७ ॥

प्रार्थना विषय

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥३८॥
१७ । २१ ॥

व्याख्यान—हे सर्व विधायक विश्व-कर्मन्नीश्वर! जो तुम्हारे स्वरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं. उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को करो । यथार्थ विद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें, तथा इन लोकों "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों । हे 'स्वधावः" स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले ! हमारे

शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ाने वाले हैं। "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो। आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिये किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं। सर्वथा आप के अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं इससे हमको स्वकृपा कटाक्ष से सुखी करें॥३८॥

स्तुति विषय

यन्म छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥३९॥
३६ । २ ॥

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय इनके छिद्र-निर्बलता राग, दोष चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्दोष) करके सत्य धर्मादि में धारण आप ही करो, क्योंकि आप बृहस्पति (सब से बड़े) हो। सो अपनी बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करें। जिससे हम लोग आप

और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें। आप सब भुवनोंके पति हैं, इसलिये आप से बारंबार प्रार्थना हम लोग करते हैं, कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों। हे परमात्मन्! आप के विना हमारा कल्याण कारक कोई नहीं है। हमको आपका ही सब प्रकार का भरोसा है सो आप ही पूरा करेंगे ॥३९॥

प्रार्थना विषय

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया
धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति
यत्रा सप्तऽऋषीन् पर एकमाहुः ॥४०॥
॥१७।२६॥

व्याख्यान—हे सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर ! आप विश्वकर्मा (विविध जगदुत्पादक) हो, तथा "विमना" विविध (अनन्त) विज्ञानवाले हो, तथा "आद्विहाया" सर्व व्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण हैं। वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है, "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है। तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट

है। "सन्दृक्" यथावत् सबके पाप और पुण्योंको देखने वाला है। जो मनुष्य उसी की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं औरों को नहीं। ईश्वर अपने भक्तों को सुखमें ही रखता है और वे भक्त भी सम्यक स्वेच्छा-पूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही सदा रहते हैं कभी दुःख को नहीं प्राप्त होते *। वह परमात्मा एक अद्वितीय है। जिस परमात्माके सामर्थ्य में सप्त लोक अर्थात् पंच प्राण अन्तःकरण और जीव

---

* इस विषय में देखो टिप्पणी पृष्ठ ७, ८, ९॥
(सम्पादक)

ये सब प्रलयविषयक कारण भूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्द स्वरूप ही रहता है। उसी की उपासना करने से हम लोगों को सदा सुख रहता है ॥ ४० ॥

स्तुति विषय

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः ।
स नो विश्वायुः सप्रथाः ।
स नः सर्वायुः सप्रथाः ।
अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥
४१॥३८।२०॥

व्याख्यान — हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणे वाली नाभि (गर्भस्थान) ऋत की भरी* नैरोग्य

* आजकल के संस्करणों में इस पाठ के स्थान पर "ऋतु की भरी" पाठ है, जो कि सर्वथा अशुद्ध है । शुद्ध पाठ यही है, जो हमने रखा है, क्योंकि:—

और विज्ञान का घर "सप्रथा:" विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हों। तथा आपकी कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हो। आप जैसे सर्वसामर्थ्य से विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृतसुखयुक्त विस्तार सहित सर्वायु हमको दीजिये। हे शान्तस्वरूप! हम "अपद्वेषः" द्वेषरहित आपकी कृपा से तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों। आपकी आज्ञा, और आपसे भिन्न को लेशमात्र भी

---

i) मन्त्र में 'ऋतस्य" पाठ है, उसका अर्थ भला "ऋतु की" कैसे हो सकता है? "ऋत की" अर्थ ही शुद्ध हो सकता है।

ii) प्रथम और द्वितीय संस्करण में यही पाठ है, जो हम ने रखा है। (सम्पादक)

ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है, इससे अन्य व्रत को कभी न मानें, किन्तु आपको "सश्रिम" सदा सेवें। यही हमारा परम निश्चय है। इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ॥५१॥

प्रार्थना विषय

यो नः पिता जनिता यो विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव
तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥४२॥
१७ । २७ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो अपना "पिता" (नित्य पालन करनेवाला) "जनिता" (जनक) उत्पादक "विधाता" सब मोक्ष सुखादि कामों का विधायक, (सिद्धकर्त्ता) "विश्वा" सब भुवन लोक लोकान्तर "धाम" अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला सब जात मात्र भूतों में विद्यमान है। जो "देव" दिव्य सूर्यादिलोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानोंका नाम व्यवस्थादि करनेवाला

"एक एव" अद्वितीय वही है अन्य कोई नहीं। वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है, इसमें शंका नहीं रखनी। तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं। क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना। उससे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं। इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के सहाय से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिए ॥४२।

स्तुति विषय

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४३॥
३४ । १ ॥

व्याख्यान—हे धर्म्यनिरुपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा "शिवसंकल्प" धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो, कभी अधर्मकारी न हो। वह मन कैसा है ? कि जागते हुए पुरुष का दूर २ जाता आता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है। अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योति-प्रकाशकों का भी ज्योतिप्रकाशक है,

अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक बड़ा चञ्चल वेगवाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्म्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है। "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्य साधक, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है। उसको आप हमारे वश में यथावत् करें जिससे हम कुकर्म में कभी न फसें।। सदैव विद्या, धर्म्म और आपकी सेवा में ही रहैं ॥४३॥

प्रार्थना विषय

न तं विदाथ य इमा
जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या
चासुतृप उक्थ शासश्चरन्ति ॥४४॥
१७ । ३१ ॥

व्याख्यान—हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनाने वाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो । इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यंत अविद्या से आवृत, मिथ्यावाद, नास्तिकत्व, बकवाद करते हो, इससे दुःख तुमको मिलेगा, सुख नहीं । तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राण-

पोषणभाव में ही प्रवृत्त हो रहे हो। "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय-भोगों के लिये ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो, और जिसने ये सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी पर ब्रह्म से उलटे चलते हो। अतएव उसको तुम नहीं जानते। (प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग, ये दोनों एक हैं वा नहीं? (उत्तर) "युष्माकमंतरं बभूव," ब्रह्म और जीवकी एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त कभी नहीं होता, इस से यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न ही हैं

किञ्च व्याप्य व्यापक, आधाराधेय, (सेव्य सेवकादि) जन्यजनकादि सम्बन्ध तो जीवादि के साथ ब्रह्म का है । इस से जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥४४॥

स्तुति विषय

भग॑ एव भग॑वाँ२॥ऽअस्तु देवा-
स्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम ।
तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ इज्जो॑हवीति॒
स नो॑ भग पुर ए॒ता भ॑वे॒ह ॥४५॥
३४ । ३८ ॥

व्याख्यान—हे सर्वाधिपते ! महाराजेश्वर ! आप भग परमैश्वर्यस्वरूप होनेसे भगवान् हो । हे (देवाः) विद्वानो !"तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेनैव) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्य युक्त हों । हे "भग" परमेश्वर ! सर्व संसार "तं त्वा" उन आपको ही ग्रहण करने को * अत्यन्त

* सामान्य भाषानुसार "की" । (सं०)

इच्छा करना है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है, जो आप को प्राप्त होने की इच्छा न करे ? सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों, फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हों ×। आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, परजन्म में तो कर्मानुसार फल होता भी † है, और आप की सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥४५॥

× अर्थात्—सो आप हमें सदैव प्राप्त हों और कभी हम से आप दूर न हों और ऐश्वर्य भी हम से अलग न हो। (सम्पादक)

† सामान्य भाषा में "ही"। (सं०)

प्रार्थना विषय

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥४६॥ २३। १९॥

व्याख्यान—हे समूहाधिपते! आप मेरे 'गण" सब समूहों के पति होने से आप को गणपति नाम से ग्रहण करता हूं। तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के 'पति" पालक भी आप ही हैं। इससे आपको प्रियपति अवश्य जानूं। एवं मेरी सब निधियों के पति होने से आप को मैं निश्चित निधिपति जानूं। हे"वसो"सब जगत् जिस सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है, उस "गर्भ" स्व-

सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूं। सो गर्भ सब का कारण आपका सामर्थ्य है। यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि* जगत् तो जन्मता और मरता है, परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं। आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेंकूं। तथा हम सब लोग आप की ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलंब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा ॥४६॥

* जीव से तात्पर्य यहां प्राणी (आत्मा और शरीर संयुक्त) का है। (सम्पादक)

प्रार्थना विषय

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥४७। १।५॥

व्याख्यान—हे **सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूंगा । सो इस व्रतको आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों* से (पृथक हो**

---

* यहां अनृत का अर्थ अनित्य दर्शाया गया है, सामान्यतया "ऋत" नाम है सत्य का जो सदा रहे । देहादि पदार्थ सदा न रहने से अनित्य अर्थात् 'अनृत' हैं । यह अभिप्राय है ।

(सम्पादक)

के) इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस विद्यादि लक्षण धर्मको प्राप्त होता हूं। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य विद्वान् सत्याचरणी आप की भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊं ॥४७॥

स्तुति विषय

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४८॥
२५ । १३ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देने वाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता * तथा "बलदाः" त्रिविध बल—एक मानसविज्ञान बल, द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की

* – अर्थात् जीवन और प्राणों का दाता है ।
(सम्पादक)

स्वस्थता, तेजोवृद्धि, तृतीय शरीर-बल महापुष्टि दृढाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि-इन तीनों बलों का जो दाता है, जिस के "प्रशिषम्"अनुशासन (शिक्षा मर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी और अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना इसका उलटा कोई नहीं कर सकता है। जिसकी छाया = आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगोंका मोक्ष कहाता है। तथा जिसकी अच्छाया* (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये बारम्बार मरण और जन्मरूप महाक्लेश-

---

* प्रथम और द्वितीय संस्करण में पाठ 'छाया' है।

दायक है। हे सज्जन मित्रो! वही एक परमसुखदायक पिता है। आओ अपने सब मिल के प्रेम विश्वास और भक्ति करें। कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥४८॥

स्तुति विषय

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथोऽअन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये
शिवꣳशग्मꣳशंय्योः शंय्योः ॥ ४६ ॥
३ । ४३ ॥

व्याख्यान—हे पश्वादिपते महात्मन् ! आपकी ही कृपा से उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक सब पशु और अन्न सर्व रोगनाशक ओषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख, जिससे किसी पदार्थ के विना हम को दुःख न हो। हे विद्वानो! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा

से क्षेम कुशलता और शांति तथा सर्वो-पद्रव विनाश के लिये "शिवम्" मोक्ष-सुख "शग्मम्" और इस संसार के सुखको मैं यथावत् प्राप्त होऊं। मोक्ष-सुख और प्रजा-सुख इन दोनों की कामना करने वाला जो मैं हूं, उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये। आप का यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना पूरी करना॥ ४९॥

———

प्रार्थना विषय

तमीशा॑नं॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑
धियञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् ।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे
र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥५०॥
२५ । १८ ॥

व्याख्यान—हे सुख और मोक्षकी इच्छा करने वाले जनो ! उस परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिये अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे । क्योंकि वह "ईशान"(सब जगत् का स्वामी) है । और ईषण (उत्पादन) करने की इच्छा करने वाला है । दो प्रकार का जगत् है चर

और अचर । इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करने वाला वही है । "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है । उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिये हम स्पर्द्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं । जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिये पोषणप्रद है, वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानोंकी वृद्धिका "रक्षिता" रक्षक है । तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिये हमारा "पायुः" पालक वही है और "अदब्धः" हिंसा रहित है । इस लिये ईश्वर जो निराकार सर्वानन्दप्रद है । हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो । विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है ॥ ५० ॥

स्तुति विषय

मयीदमिन्द्रं इन्द्रियं दधात्वस्मान्
रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः
सत्या नः सन्त्वाशिषः ॥ ५१ ॥
२ । १० ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर! "मयि" मुझ में विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय, "रायः" उत्तम धनको "मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो। हे सर्व काम पूर्ण करने वाले ईश्वर! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिए (पुनरुक्त अत्यन्त

प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है)*। हे भगवन्! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिए, जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहें ॥५१॥

---

*मन्त्र में "सन्त्वाशिषः" पाठ दो वार आया है। ये ब्रैकट के अन्दर वाले शब्द मन्त्र के इस पाठ के विषय में लिखे गये हैं। (सम्पादक)

प्रार्थना विषय

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्
सनिं मेधामयाशिषꣳ स्वाहा ॥५२॥
३२ । १३ ॥

व्याख्यान—हे सभापते विद्यामय न्याय कारिन्! हमको सभासद्,सभाप्रिय सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो। ऐसी इच्छावाले आप हम को कीजिए। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न बनावें, किन्तु आप को ही हम सभापति सभाध्यक्ष राजा मानें। आप अद्भुत, आश्चर्य, विचित्र, शक्तिमय हैं, तथा प्रियस्वरूप ही हैं। इन्द्र जो जीव उसको कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं। "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य

भी सब जीवों के आप ही हैं। "मेधा" विद्या सत्यधर्मादि धारणा वाली बुद्धि को हे भगवन् ! मैं याचना हूं। सो आप कृपा करके मुझको देओ। "स्वाहा" यही स्वकीय वाक् "आह" कहती है, कि ईश्वर से भिन्न कोई जीवों का सेव्य नहीं है। ऐसी वेद में ईश्वराज्ञा है सो सब मनुष्यों को मानना योग्य है ॥५२॥

———

स्तुति विषय

यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते ।
तया॒ माम॒द्य मे॒धया॑ग्ने॑
मे॒धाविनं॑ कुरु॒ स्वाहा॑ ॥५३॥

३२ । १४ ॥

व्याख्यान—हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणा वाली बुद्धि को देव समूह (विद्वानों के वृन्द) "उपासते"(धारण करते) हैं। तथा यथार्थ पदार्थ विज्ञान वाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं। उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। "स्वाहा" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो जाय ॥ ५३ ॥

प्रार्थना विषय

मेधां मे वरुणो ददातु
मेधामग्निः प्रजापतिः
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च
मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥५४॥
३२ । १५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप "वरुणः" (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो कृपा से मुझको "मेधा" सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिए। तथा "अग्नि" विज्ञानमय विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता पालक, "इन्द्र" परमैश्वर्यवान् "वायुः" विज्ञानवान् अनन्तबल, "धाता"

तथा सब जगत् का धारण और पोषण करने वाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये *॥ ५४ ॥

---

* अनेक वार मांगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ, सद्यः दानार्थ है। बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है। उसके होने से जीव को सब सुख होते हैं, इस हेतु से वारम्बार परमात्मा से बुद्धि की ही याचना करना श्रेष्ठ बात है।

(महर्षि)

स्तुति विषय

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं
चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रिय-
मुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ।।५।।
३२ । १६ ।।

व्याख्यान—हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र राजा तथा राज्य महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि (क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल* हों । "श्रियम" सर्वोत्तम विद्यादि लक्षण-युक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों । हे

* "अनुकूल" पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है । (सम्पादक)

"देवा" विद्वानो ! दिव्य ईश्वर-गुण परम-कृपा आदि, उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझ में अचलता से धारण कराओ । उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूं और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिए तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिए व्यय करूं ॥ ५५ ॥ इति

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां
श्रीयुत विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां
महाविदुषां शिष्येण दयानन्द-
सरस्वतीस्वामिना विरचित
आर्याभिविनये द्वितीयः
प्रकाशः सम्पूर्णः ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	३	ब्रह्य	ब्रह्म
७	१४	सख	सुख
२७	६	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
३८	१४	रावण	रावन्
३८	,,	न रावणः 'अरावण.'	न रावा अरावा तस्मात् अरावणः
४२	१	समूलाननू	समूलान्
५०	८	पंचजना 'अदितिः'	'पञ्चजना अदितिः'
५५	३	रिंष्यत्	रिंष्येत्
,,	४	ति	वि
५८	८	आशीददाति	आशीर्ददाति
७१	४	अनाद्यैश्वयंयुक्त	अनाद्यैश्वर्य-युक्त

७४	७	महाराजधिराजेश्वर	महाराजाधिराजेश्वर
७५	३	'आपश्चन'	'आपश्च न'
७५	११	'आपश्च'	'आपश्च न'
७७	५	सिंधुं	सिन्धुं
६०	५	हिये	चाहिये
६४	१	सत्यविद्यायु	सत्यविद्यायुक्त
९६	६	०मिन्द	०मिन्द्र
९६	५	वृषणया	वृष्णया
१००	४	यच्छ	यच्छं
१०३	४	शर्मशदः	शर्मसदः
,,	१४	पतीजुष्टेव	पतिजुष्टेव
१११	३	तत्वा	तत्त्वा
११७	१२	भीमतः	भामित
११८	१०	का	को
१२०	१६	'शिषुमतिः'	'शिशुमतीः'

१२५	८	१८	१०
१२६	३	कर	करैं
१३३	१३	संजोजय	संयोजय
१३६	१	यथावत	यथावत्
,,	१२	स	से
,,	१४	यथावत	यथावत्
१४४	७	म	मैं
१५१	१३	०नन्दवरूप	०नन्दस्वरूप
१५६	६	प्रेभी	प्रेमी
,,	१४	नाऽन्य, पंथा	नाऽन्यःपन्थाः
,,	४	वाह्यता	वाह्यता
१७०	३	,	।
,,	५	ऋक	ऋक्
१७२	१	बृहद्रथान्तर	बृहद्रथन्तर
		महारथान्तर	महारथन्तर
,,	६	मरणान्तर	मरणानन्तर
१७५	८	इक्षण	ईक्षण

स्वरों का शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२	अग्निना	अग्निनां
२२	३	यशसं	यशसं
२७	३	तेषां	तेषां
३२	२	पुरूणा। ०	पुरूणा। ०
३६	३	पृथि०याः	पृथि०याः
३८	३	रीषन	रीषंत
४१	२	दस्यवो	दस्यंवो
५८	२	पराणुदें	पराणुदें
५८	३	उत	उत
५८	५	मायिनः	मायिनंः
६०	४	इन्द्रस्य	इन्द्रंस्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	५	भवा	भवां
६४	३	शमु	शमुं
६४	५	पुरुजातो	पुंरुजातो
६९	३	इन्द्र	इन्द्रं
७५	२	यस्य	यस्यं
७५	२	मंर्त्ता	मर्त्ता
७९	५	ऊती	ऊती
८७	३	शोशुंचदघम्	शोशुंचदघम्
९३	४	चक्षसा	चक्षंसा
९३	४	द्यामपश्च	द्यामपश्चं
९६	३	०मुदवां	०मुदंवा
१००	२	मृळा	मृळा
१००	३	०राय	०राय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१००	४	यच्छ	यच्छुं
११६	४	मातरं	मातर्
११६	५	प्रिया०	प्रिया०
११९	२	उद्गातेव	उद्गातेवं
१२२	४	यदुत्पतन	यदुत्पतन्
१२२	५	बृहद्ब्रदेम	बृहद्वदेम
१३८	५	०र्था०	०र्था०
१३८	५	व्यदधा०	व्यदधा०
१४३	२	०स्यं मा	०स्यं मा
१४३	४	चक्षुषा	चक्षुषा
१४३	५	चक्षुषा	चक्षुषा
१४८	२	प्रपद्ये	प्रपद्ये
१५०	३	धामानि	धामानि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५०	४	अमृतं०	अमृतं
१५८	३	वीर्यु०	वीर्य०
१६०	४	उपस्थायं	उपस्थायं
१६७	३	०तरंस्य	०तरंस्य
१७०	५	०मात्मा	०मात्मा
१७०	७	स्वर्यज्ञेनं	स्वर्यज्ञेनं
१७०	७	पृष्ठं	पृष्ठं
१७०	८	यज्ञो	यज्ञो
१७०	१०	०मृतां	०मृतां
१७४	२	अन्यो	अन्यो

आर्य समाज के नियम

१–सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करना योग्य है।

३–वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है।

४–सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५-सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६-सँसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, आर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७-सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्ताव करना चाहिये।

८-अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहित-कारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थ काममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ।

अर्थ—हे ईश्वर दयानिधे ! आप की कृपा से जो २ उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आप के समर्पण हैं, जिस से हम लोग आप को प्राप्त हो के, धर्म जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है, और मोक्ष जो दुःखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हम को शीघ्र प्राप्त हो । (महर्षि—वैदिक सन्ध्या)

वैदिक भक्ति वाद

"हे न्यायकारी आप का तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते ।" ऋषि दयानन्द सरस्वती

" हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य्य नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुण युक्त, कृपा से, हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर ।

अन्य देश वासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों ।" ऋषि दयानन्द सरस्वती